कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

वार्षिक मूल्य : 100 रुपये

वर्ष 53 अंक : 7 | मई 2007 | मूल्य : 10 रुपये

श्रमिक की मुस्कान ग्रामीण भारत की पहचान

प्रतियोगिता परीक्षाओं में सफलता

एक सम्पूर्ण वार्षिक संदर्भ ग्रंथ के साथ

- राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समसामयिक घटनाओं का विश्लेषण,
- खेल समाचार,
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी,
- उद्योग व्यापार,
- विशिष्ट व्यक्तियों, पुरस्कारों एवं अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर भी उपयोगी सामग्री

संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं के साथ-साथ अन्य सभी परीक्षाओं के लिए भी विशेष उपयोगी

टॉपर्स की नजर में...

...'प्रतियोगिता दर्पण ईयर बुक' काफी अच्छी है. प्रारम्भिक परीक्षा में यह प्रत्याशियों के लिए बेहद लाभदायक है। इसे अंग्रेजी में भी प्रकाशित करें। —सुश्री मोना प्रूथी
सिविल सेवा परीक्षा, 2005 में प्रथम स्थान

....तैयारी के अन्तिम चरण में मैंने 'प्रतियोगिता दर्पण वार्षिकी' को पढ़ा है. यह लगभग प्रत्येक विषय पर 'One Stop' सूचना प्रदान करती है। —रन्धीर कुमार
सिविल सेवा परीक्षा, 2005 में तृतीय स्थान

....'प्रतियोगिता दर्पण वार्षिकी' यह बहुत संक्षिप्त एवं ज्ञानवर्धक सामग्री से परिपूर्ण है. यह प्रतियोगियों के लिए अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हो रही है। —जुहैर बिन सग़ीर
सिविल सेवा परीक्षा, 2005 में पाँचवाँ स्थान

....'प्रतियोगिता दर्पण वार्षिकी' एक अच्छी और उपयोगी पुस्तक है. सिविल सर्विसेज की तैयारी के लिए यह पुस्तक एक वरदान की तरह है, क्योंकि इसमें समस्त विषयों की सामग्री एक ही स्थान पर उपलब्ध हो जाती है. मुझे स्वयं इससे बहुत मदद मिली और कई प्रश्नों को मैं इसी के कारण लिख सकी. —ऋचा अग्रवाल
उ.प्र. पी.सी.एस. परीक्षा, 2004 में प्रथम स्थान

....'प्रतियोगिता दर्पण वार्षिकी' प्रकाशन, समय, आकार और अध्ययन सामग्री सभी मानदण्डों पर सर्वथा खरी उतरी है. महत्वपूर्ण तथ्यों का विश्वसनीय संग्रह निस्संदेह अत्यंत लाभदायक है. —श्रीमन् शुक्ला
सिविल सेवा परीक्षा, 2005 में 80वाँ स्थान

ENGLISH EDITION IS ALSO AVAILABLE

प्रतियोगिता दर्पण 2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा–282 002 फोन : 2530966, 2531101, 3208693/94
Fax : (0562) 2531940 E-mail : info@pratiyogitadarpan.org
To purchase online log on to www.pratiyogitadarpan.org

KH-05/07/05

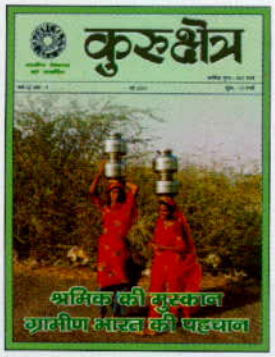

वर्ष : 53 ★ मासिक अंक ★ पृष्ठ : 48
वैशाख–ज्येष्ठ 1929, मई 2007

प्रभारी सम्पादक
कैलाश चन्द मीना
संपादकीय पत्र–व्यवहार
संपादक, कुरुक्षेत्र
कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 23061014, 23061952
फैक्स : 011–23061014, तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : dpd@sb.nic.in dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
एन.सी. मजुमदार

व्यापार प्रबंधक
जगदीश प्रसाद
दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

आवरण एवं सज्जा
संजीव सिंह और रजनी दवे

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	550 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	750 रुपये (वार्षिक)

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

कुरुक्षेत्र

इस अंक में

• 1857 की दिल्ली- भ्रम, भ्रांति और वास्तविकता	के.सी. यादव	2
• बढ़ता जल संकट-गंभीर चुनौती	अनिता मोदी	7
• अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन	सुरेश लाल श्रीवास्तव	10
• ग्रामीण विकास में पर्यटन का योगदान	सुभाष सेतिया	13
• राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम	प्रमोद कुमार मिश्र	17
• भारतीय स्टेट बैंक का क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	मिनाक्षी गणोरकर	19
• बायो डीजल पौधा रतनजोत : वरदान या अभिशाप	अरविन्द सिंह	22
• भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु जन-जागरूकता	गणेश कुमार पाठक व सुनीता चौधरी	25
• ग्रामीण श्रमिकों की दशा और दिशा	इन्दु जैन	27
• बहुउपयोगी वृक्ष 'शीशम'	मधुज्योत्सना	30
• भारत में कृषक श्रमिक : उद्भव एवं विकास	दयाशंकर सिंह यादव	35
• विकलांगों का सहारा: रेशम उद्योग	सत्यभान सारस्वत	38
• ग्रेट निकोबार द्वीप की विलुप्त होती शोम्पेन जनजाति	रमेश चन्द्र तिवारी	41
• पंचायती राज संस्थाओं में महिलाएं	निर्मल कुमार आनंद	44
• राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन की शिक्षा पर रिपोर्ट की मुख्य बातें	-	48

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

1857 की दिल्ली

भ्रम, भ्रांति और वास्तविकता

के.सी. यादव

अठारह सौ सत्तावन की क्रांति पर जितना लिखा गया है शायद उतना हमारे आधुनिक इतिहास की किसी भी घटना पर नहीं लिखा गया है। लेकिन इतना होने पर भी, ताज्जुब की बात है, कि भ्रमजाल चारों तरफ बड़ी बुरी तरह से फैला हुआ है। आज भी इतनी धूल उड़ रही है कि कुछ भी साफ नजर नहीं आता।

1957 में जब क्रांति के सौ वर्ष पूरे हुए तो काफी शोर–गुल हुआ। कुछ आशा बंधी कि स्थिति बदलेगी। कई कद्दावर इतिहासकार मैदान में उतरे। लेकिन अंग्रेजी बासे बूर से बने लड्डुओं पर देशी वर्क चिपकाकर हमें थमा गए। न खाए बनता है, न फेंके।

अब 150 वर्ष बीतने पर फिर कुछ चहचहाट सुनने को मिल रही है। अब तक कुछ खास होता नजर नहीं आता।

चार–पांच साल पहले कुछ योजनाएं बनतीं, विश्वविद्यालयों, उनके बाहर प्रबुद्ध लोग गंभीरता से कोई शोध–खोज करते, तो कुछ अच्छे सुखद परिणाम भी देखने को मिलते। लेकिन हम तो रस्मअदायगी में ज्यादा विश्वास करते हैं। किसी ऐतिहासिक घटना या व्यक्ति को याद करने का तरीका या सलीका भी ऐसा अपनाते हैं कि भूलना ही अच्छा लगे।

'सिपाही विद्रोह' या .....

अंग्रेज ने अपने साम्राजीय हित में कह दिया कि, क्रांति कोई नहीं यह तो 'सिपाहियों का विद्रोह था– और सब सिपाहियों का भी नहीं केवल 'बंगाल आर्मी के सिपाही का। आज भी बहुत सारे लोग उस 'सत्य वचन' को सिर पर उठाए चल रहे हैं। डा. सुरेंद्रनाथ सेन का कहना है कि हां दक्षिण तो पूरी तरह शांत था– वहां तो सिपाही विद्रोह भी नहीं हुआ। लेकिन 'ब्रिटिश पार्लियामेंटरी पेपर्स' में लिखा है कि बगावत की वजह से छोटी–सी मद्रास आर्मी के 1954 सिपाहियों को, बाम्बे आर्मी के 1213 सिपाहियों को, और भारी–भरकम बंगाल आर्मी के 1914 सिपाहियों को फांसी दी गई थी। यह प्रतिशत दर से ऐसे है: बंगाल में 1.5 प्रतिशत सिपाहियों को फांसी लगी, और बॉम्बे तथा मद्रास में क्रमशः 2.7 और 2.1 प्रतिशत को।

वस्तुतः '1857' के विषय में यह सबसे बड़ी गप्प है कि यह 'सिपाही विद्रोह' था या सिपाहियों ने इसे शुरू किया था। सत्य यह है कि यह एक व्यापक जन–क्रांति थी जिसमें सिपाही भी बड़ी संख्या में शामिल थे। अकेले सिपाहियों ने कहीं भी बगावत नहीं की और यदि कहीं भावावेश में कर भी दी तो वह दो डग भी नहीं चल पाई, असफल

बहादुरशाह ज़फर

हो गई। बैरहामपुर, बारकपुर के उदाहरण हमारे सामने हैं। मेरठ से नौ घंटे पहले, 10 मई 1857 को, अंबाला में तीन देशी पलटनों ने खुली बगावत की, अपने अफसर कैद कर लिए पर जन–सहयोग न होने से कदम पीछे हटाने पड़े। मेरठ में ऐसा नहीं था। सिपाहियों को व्यापक जन आधार मिला और वे अपने काम में सफल रहे।

दिल्ली की स्थिति

दिल्ली में स्थिति भी ऐसी ही थी। 10 मई (रात) को (11 को सुबह नहीं) मेरठ से कुछ सिपाही आए और यहां तुरंत क्रांति की ज्वाला धधक उठी। मेरठ के सिपाहियों ने नहीं, इसे स्थानीय जनता ने हवा दी थी। फिर दिल्ली के सिपाही इसमें शामिल हुए। फिर धीरे–धीरे अन्य जगहों से अनगिनत सिपाही यहां जमा हो

गए। सिपाही का काम युद्ध में लड़ना होता है। ये हजारों सिपाही बड़ी बहादुरी से मध्य सितंबर तक लड़े। पर ये अंग्रेजी बाढ़ को रोक नहीं पाए। उनकी भारी तोपों ने दिल्ली की रक्षा–व्यवस्था को नष्ट कर दिया–अंग्रेजी फौज शहर में घुस गई।

जनता का युद्ध

स्थिति की गंभीरता को देखते हुए 13 सितंबर को शाही आज्ञा जारी हुई कि अब प्रत्येक नागरिक शत्रु का मुकाबला करे। तुरंत सैकड़ों–हजारों जवान, बूढ़े, स्त्री, पुरुष मैदान में उतर पड़े। दिल्ली के द्वार–दीवार तोड़कर, छाती फुलाए, लाल किले पर अपना झंडा फहराने, मस्ती से चले आ रहे अंग्रेजों ने जब जन सैलाब देखा तो उनके होश उड़ गए। एक–एक इंच भूमि पर मार्के का युद्ध हुआ। अंग्रेज अफसर कहते हैं, हमने बहुत–सी लड़ाइयां लड़ीं, पर ऐसी लड़ाई कभी नहीं देखी। वहां लड़ रहा कप्तान हडसन अपनी पत्नी को एक पत्र में लिखता है कि अंग्रेज सिपाही अपने अफसरों की बात सुनते ही नहीं। वे बुरी तरह से डरे हुए हैं। जनरल निकल्सन का अनुभव भी ऐसा ही रहा। वह सिपाहियों को हमला करने के लिए ललकारता हुआ पूरे जोश के साथ आगे बढ़ा। एक भी सिपाही पीछे नहीं चला। थोड़ी दूर वह आगे बढ़ा और गोली खाकर ठंडा हो गया।

अंग्रेजी सेना का इतना नुकसान किसी भी लड़ाई में नहीं हुआ था। दिल्ली फील्ड फोर्स का महानायक जनरल विल्सन इससे इतना टूट गया था कि वह 'पागलों जैसी हरकत करने लगा था'। उसके डिप्रेशन का यह हाल था कि वह 'खड़ा नहीं हो सकता था।' 13 तारीख की मार से तो वह ऐसा बौखलाया कि दिल्ली से बाहर निकलने की बात करने लगा– "रिज पर चलो या करनाल। मैं इतने सैनिक गंवाने के आघात को बरदाश्त नहीं कर सकता।"

अंग्रेज जन–युद्ध में, दिल्ली की गलियों की लड़ाई में, पूरी तरह से पिट चुका था। अब उसके पास एक ही विकल्प था– दगा–फरेब की लड़ाईः गद्दारों और भेदियों की सहायता से हारी हुई बाजी को जीत में तब्दील करने का कुकृत्य।

फरेब का फंदा

जनरल विल्सन ने इस 'कुकृत्य' का महानायक कप्तान हडसन को बनाया। यद्यपि 20 जून 1857 के अपने एक खास आदेश द्वारा गवर्नर–जनरल कैनिंग ने दिल्ली के अधिकारियों को स्पष्ट आदेश दे दिए थे कि बादशाह या उसके परिवार से संबद्ध कोई भी समझौता उसको बताए बिना और उसकी आज्ञा के बगैर न किया जाए, पर विल्सन, हडसन, आदि 'लड़ाई में सब कुछ जायज है' के आदेश के मानने वाले थे। हडसन ने अपने आदमी, और बादशाह के खासमखास हकीम एहसानुल्ला और बेगम जीनत महल को पकड़ा। दोनों को भारी लालच दिया और बादशाह को आत्म–समर्पण करने के लिए राजी करने का षड़यंत्र रचा।

पंजाब गवर्नमेंट रिकार्ड्स में हडसन की एक महत्वपूर्ण चिट्ठी है (गवर्नर–जनरल के नाम) जिसमें इस षड्यंत्र का पूरा खुलासा किया गया है। बेगम ने कई शर्तें रखीं कि बादशाह की पहले वाली स्थिति बरकरार रहे, उसके बाद उसका बेटा जवांबख्त गद्दीनशीन हो, आदि, आदि। हडसन ने कहा– स्थिति ऐसी है कि तुम सब मारे जाओगे। अपने पति, बेटे और बाप की जानबख्शी के बदले यह काम करो। काफी जोर–दबाव में आकर बेगम मान गई।

स्थिति की गंभीरता को अंग्रेज जानता था। उसके लिए दिल्ली फतह करना टेढ़ी खीर बन गई थी, और यदि फतह भी हासिल हो जाती और बादशाह विद्रोहियों के हाथ रहता तो वह फतह वास्तविक फतह नहीं रहती। इस नाजुक समय में बेगम मिर्जा मुगल और अन्य शाहजादों की जान–सलामती की बात करती तो वह भी हडसन मान जाता। जब सारे 'झगड़े की जड़' बादशाह को माफ किया जा सकता था तो उसके अधीन काम करने वाले शाहजादों को क्यों नहीं माफ किया जा सकता था? जीनत महल ने जान–बूझकर यह शर्त नहीं रखीं और हो सकता है, उसने अपने बेटे के रास्ते के सब कांटों को, सीधे या सांस्कृतिक ढंग से, साफ (कत्ल) करने की बात भी हडसन से की हो। अन्यथा हडसन को इतनी जल्दी उन्हें कत्ल करने की क्या पड़ी थी।

अंग्रेजों की बुरी स्थिति

जब हडसन–जीनत फरेब–जाल बुना जा रहा था उस समय दिल्ली का युद्ध चरम सीमा पर था। जनरल विल्सन की रातों की नींद उड़ चुकी थी। अंग्रेज सैनिक 'स्ट्रीट फाइट' और 'रेड फोर्ट' का नाम सुनते ही घबरा जाते थे। 14 सितंबर को वे बुरी तरह–डरे–सहमे दुबके पड़े रहे। 15 तारीख को बाहर निकलने के आदेश दिए तो, चार्ल्स ग्रिफिथ्स कहता है– 'पैदल पलटनों को सांप सूंघ गया'। काफी दबाव के बाद वे निकले, लड़ाई हुई, पर कारगर नहीं। इन सहमे हुए सैनिकों को एक शराब की दुकान कहीं हाथ लग गई तो इतनी शराब पी गए की पागल हो गए।

16 सितंबर को सारी दिल्ली लाबंद लगी। सब तरफ से जबरदस्त हमला करने की तैयारी थी। लेकिन इसी समय गद्दार भी लामबंद हो गए। चारों तरफ से बादशाह को घेर लिया और वायदे पर वायदे करके बूढ़े आदमी को तोड़ लिया। दोपहर बाद बादशाह 'लापता' हो गया। तरह–तरह की अफवाहें शहर में फैल गईं, और देखते ही देखते जीती हुई बाजी लड़खड़ा उठी। दूसरे दिन बादशाह का सुराग मिला–ख्वाजा निजामुद्दीन की दरगाह में बैठे थे।

बादशाह 'चला गया' तो दिल्ली भी सूनी हो गई। 19 तक अंग्रेजों के पैर दिल्ली की गलियों की तरफ बड़ी मुश्किल से उठते थे। अब, 20 तारीख को, वे खाली गलियों में मौज से लूटपाट करते घूम रहे थे। बिना लड़े वे दिल्ली को फतह करने में सफल हो गए थे।

बेगम जीनत महल

'बागी' भागे नहीं

सिपाहियों के सामने इस समय बड़ा विकट प्रश्न खड़ा हुआ–अब क्या करें? हिंदुस्तान बहुत बड़ा है, दिल्ली ही तो सब कुछ नहीं हैं, और कहीं लड़ेंगे– उन्होंने प्रश्न का उत्तर ढूंढ लिया था। और दूसरे ही क्षण वे पीछे हट गए। लेकिन अंग्रेज इतने डरे हुए थे कि एक भी आदमी उनका पीछा करने या लड़ने की हिम्मत नहीं कर पाया। जनरल विल्सन से कहा– 'कुछ करो' वह बोला–'नो'! भारतीय सैनिक अपने ढंग से दिल्ली से बाहर चले गए।

जनरल बख्तखां ने बहादुरशाह को समझाया। वह पलट गया और 'बागी फौजों' से मिलने के लिए निकल पड़ा। पर वह कुतुब तक पहुंचा ही था कि, हडसन कहता है, मेरा आदमी इलाही बख्श उसे घेरने में सफल हो गया। दबाव डाला, सब्जबाग दिखाए, बेगम जीनत महल का उसे संदेश दिया और वह ख्वाजा निजामुद्दीन की दरगाह में पुनः लौट आया। यहां बेगम जीनत महल पहले से बैठी थी। जासूस रज्जब अली भी आ गया था। चांडाल चौकड़ी ने बादशाह को आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर कर दिया। दूसरे दिन हडसन आया और बादशाह को बंदी बनाकर ले गया। और इस प्रकार दिल्ली में क्रांति का अंतिम अध्याय फरेब व कपट की कलम से लिखा गया।

'स्वतंत्र दिल्ली' को लेकर इतिहासकारों में काफी मतभेद हैं। ज्यादातर इतिहासकार कहते हैं कि 11 मई के बाद दिल्ली में वास्तव में 'गदर' मचा रहा। यहां क्रांति के स्वरूप को तथा विस्तार को लेकर भी काफी भ्रांतियां हैं। इन विषयों पर कुछ चर्चा करना आवश्यक है।

'स्वतंत्र दिल्ली' की व्यवस्था

इतिहास की लगभग हर पोथी में लिखा मिलता है कि 'स्वतंत्र दिल्ली' में लोग बहुत दुखी थे। कानून–व्यवस्था वहां थी ही नहीं। चारों तरफ छीना–झपटी का माहौल था। सिपाही लड़ने की बजाय लूट–पाट में ज्यादा विश्वास करते थे। परिणामतः दिल्ली का आम आदमी उनसे अत्यधिक दुखी था और माला जपता था कि अंग्रेज जल्दी ही वापिस आ जाएं।

ये सब बेबुनियाद बातें हैं। 'स्वतंत्र दिल्ली' में कानून–व्यवस्था बेहतरीन किस्म की थी। पांच महीनों में, ऐसे अफरातफरी के माहौल में भी, यहां एक भी कत्ल न हुआ, न कोई बड़ा डाका पड़ा या बड़ी चोरी हुई: बलात्कार, महिला–उत्पीड़न, आदि का भी कहीं नामोनिशान नहीं। लूट–पाट तो हुई। पर इसमें सिपाहियों की भूमिका क्या थी? हो सकता है, कोई एकाध भटक गया हो। जो लोग अपने देश की स्वतंत्रता जैसे ऊंचे उद्देश्य के लिए अपना सब कुछ दांव पर लगा बैठे थे, भला वे ऐसे तुच्छ काम करेंगे। देहली उर्दू अखबार का कथन है कि शातिर बदमाश लोग सिपाहियों का वेश धारण करके शहर में लूट–पाट करते थे। मौलवी जकाउल्ला ने इस विषय में बड़े मार्के की बातें कही हैं। वह अंग्रेज–भक्त था, इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता है कि वह क्रांति–समर्थक था। अपनी मशहूर पुस्तक उरुजे अहदे सल्तनते इंगलिशिया में वह लिखता है कि 'कुछ लोगों ने यह काम शुरू कर दिया है कि तिलंगों (सिपाहियों) का वेश बनाकर घूमते हैं।.....कल ऐसे पांच आदमी कैद किए गए। खारी बावली, चांदनी चौक, दरीबा, चावड़ी में दुकानें बंद हो गईं, हालांकि उनमें से कोई एकाध लुटी थी। दरीबे में सर्राफे की एक दुकान लुटी थी जिस पर सब सर्राफों ने अपना सोना, गहना तथा रुपया घर चलता किया और अपनी दुकानों के सामने विलाप करने को खड़े हो गए कि हाय, हम लुट गए! गली–कूचे में इस लूट का कोई असर न था। सब सौदा–सुलुफ उसी तरह बिक रहा था। अगर कोई बदमाश गली–कूचे के दुकानदार से टिस–फिस करता, तो मुहल्ले वाले उसको ठीक कर देते।'

'म्यूटिनी पेपर्स' से हमें पता चलता है कि कई जगह सिपाही सूखे चने खाकर लड़ रहे थे। उधर कुछ दुकानदार अंग्रेजों को राशन–पानी पहुंचा रहे थे। कुछ महाजन, जो अंग्रेजों से सहानुभूति रखते थे, वे न चंदा देते थे, न कर्जा। ऐसे लोगों के साथ 'लूट–पाट' की घटनाएं हुई हैं। भला महाजन कोई भी नहीं लुटा।

पुलिस की भूमिका

क्रांति के दौरान पुलिस ने बड़ी अच्छी भूमिका अदा की। पहले दिल्ली में 12 थाने थे। क्रांति होने पर 25 कर दिये गए। नई पुलिस भर्ती की गई। कोतवाल तथा स्थानीय थानेदारों की सहायता से इन्होंने अच्छा इंतजाम किया। देहली उर्दू अखबार ने अपने 21 मई के अंक में इस सत्य को स्वीकारा है। वह कहता है: 'कोतवाल शहर के गश्त की और उसकी कोशिशों की सब तारीफ करते हैं।.....कुछ थानेदार भी बड़ा अच्छा काम कर रहे हैं। सब आमो–खास इनके काम की तारीफ कर रहे हैं।' 14 जून को इसी विषय पर फिर एक टिप्पणी है– 'कोतवाल और थानेदारों की गश्त की वजह से चोरी और नकब की रोकथाम का माकूल इंतजाम हो गया है। अब कहीं से ऐसी शिकायतें नही आतीं।'

बीस हजार 'म्यूटिनी पेपर्स' से पता चलता है कि पुलिस कानून व्यवस्था के अतिरिक्त और भी ढेर सारी जिम्मेदारियां निभाती थी, जैसे सेना को जरूरी सामान पहुंचना, मजदूर और कार्यकर्ता मुहैया कराना, शहर की साफ–सफाई करवाना, मुर्दों का अंतिम संस्कार कराना, डाक आदि की व्यवस्था करना, चंदे की वसूली में सहायता करना। कोर्ट–कचहरी के काम–काज को ठीक प्रकार से चलवाने में मदद करना, आदि।

प्रजातांत्रिक व्यवस्था

यह बड़े ताज्जुब की बात है कि क्रांति के दिनों में दिल्ली की व्यवस्था बादशाह ने एक चुनी हुई प्रजातांत्रिक 'कोर्ट' के हाथ में संभलवा रखी थी। कोर्ट बाकायदा लिखित संविधान के अनुसार काम करती थी। यह कोर्ट वैसे तो बादशाह के अधीन थी, पर उसे अपना काम स्वतंत्रता से करने की पूरी छूट थी। 'म्यूटिनी पेपर्स' के अध्ययन से पता चलता है कि कोर्ट ने उस कठिन समय में भी अपना काम बहुत अच्छी तरह से किया। गलत काम करने वाले किसी भी आदमी को उसने नहीं बख्शा, चाहे कोई शाहजादा भी क्यों न हो। एक पत्र में तो यह सेना के प्रधान सेनापति बख्त खां को भी खरी–खोटी सुनाती दिखाई देती है। जो लोग कहते हैं कि यदि 1857 की क्रांति सफल हो जाती तो यहां गली–सड़ी सामंती व्यवस्था पुनः लागू हो जाती, उन्हें इस कोर्ट और इसके संविधान की तरफ गंभीरता से देखना चाहिए।

दिल्ली की विपदा

20 सितंबर को, जैसा की ऊपर कहा जा चुका है, दिल्ली पुनः अंग्रेजों के कब्जे में आ गई। चूंकि दिल्ली की जनता या तो क्रांति में शामिल थी या क्रांतिकारियों से सहानुभूति रखती थी, इसलिए अंग्रेजों ने उन पर वे जुल्म ढाए कि लोग नादिरशाह आदि की लूट–पाट तक को भूल गए। लेकिन बड़ी हैरानी की बात है कि आज तक किसी ने इस जान–माल की हानि का अंदाजा भी नहीं लगाया।

दिल्ली जो कि लगभग 1,50,000 की आबादी वाला शहर था, देखते ही देखते' मुर्दों का शहर' हो गया। लगभग 45,000 लोग मारे गए। बाकी जान बचाकर भाग गए। यहां लगभग 30–40 हजार के करीब सैनिक थे। उनमें से 9–10 हजार लड़ाई में मारे गए। अंग्रेजी सेना ने शहर को बुरी तरह से लूटा। अमीर लोगों के घरों को खोद डाला, यह सोचकर कि वहां धन गड़ा होगा। दिल्ली पर बहुत बार आफतें (गर्दियां) आईं, लेकिन दिल्ली वालों का कहना था कि ऐसी आफत आज तक कभी नहीं आई थी।

धर्म युद्ध?

जो लोग क्रांति को 'सिपाही विद्रोह' नहीं मानते, उनमें से बहुत सारे इसे 'धर्म युद्ध' कहते हैं। उनका कहना है कि अंग्रेज ने जितने भी अच्छे सुधार के काम किए उन्हें 'असभ्य' भारतीयों ने अपने धर्म में हस्तक्षेप करने की संज्ञा दी और वे 'धर्म व दीन खतरे में हैं' के नारे लगाते हुए विद्रोह में शामिल हो गए।

अभी हाल में विलियम डैलिरिमपल नाम के एक अंग्रेज लेखक ने दि लास्ट मुगल नाम की अपनी पुस्तक में यह पुराना राग नए सुर और ताल के साथ खूब गाया है। नए रूप में यह अत्यंत खतरनाक राग है और 1857 की महान् क्रांति को आज के 'आतंकवाद' की जड़ ठहराता है। वह हर जगह धर्मांध मुसलमानों का 'जेहाद' देखता है, और अफगानिस्तान के 'तालिबान' और पाकिस्तान के 'अलकायदा' जैसे संगठनों की नींव यहीं, 1875 से, पड़ी मानता है।

यह सब डैलिरिमपल की तत्कालीन जीवन की नासमझी का नतीजा है। 'जेहाद' शब्द उस समय बिल्कुल दूसरे मायने रखता था। दिल्ली का एक हिंदू जनरल भी युद्ध को 'जेहाद' कहता है। 'दीन'–'दीन' के नारे हिंदू सिपाही और नागरिक भी लगाते थे। एक समसामयिक शायर कहता है:

जुबां से कहते हुए दीन, दीन आए औलीन,
मातादीन था कोई तो गंगादीन था कोई।।

दिल्ली में क्रांति के समय दिखने वाला हरा झंडा इस्लाम का नहीं, बादशाह बहादुरशाह का पैतृक शाही झंडा था। प्रत्येक शाही फरमान, विद्रोहियों का एक–एक ऐलान, हिंदू–मुस्लिम एकता की बात करता है। दिल्ली की आबादी कोई डेढ़ लाख के करीब थी। इनमें हिंदू मुसलमानों से 4–5 प्रतिशत ज्यादा थे। सैनिकों में तो हिंदुओं की नफरी बहुत ही ज्यादा थी। क्रांति के दौरान हिंदू–मुस्लिम दोनों ने भाई–भाई की तरह रणभूमि में देश के लिए अपना खून बहाया। जकाउल्ला अपनी पुस्तक में लिखता है कि मुसलमानों की भीड़ को जगह–जगह दिल्ली में उस समय हिंदू शरबत व ओले पिला रहे थे।

वस्तुतः 1857 के नेताओं ने, तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए, धर्म को भारतीय राष्ट्रीयता को मजबूत बनाने के औजार के रूप में पहली बार बड़े व्यापक पैमाने पर, पूरी कामयाबी के साथ इस्तेमाल किया था। क्रांति के बाद भी, स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान, यह सफल तजुर्बा काफी प्रेरणाप्रद रहा।

क्रांति अपरिहार्य थी?

वास्तव में कंपनी के सौ वर्ष के शासन से भारत के लोग इतने ज्यादा दुखी हो गए थे कि वे हर क़ीमत पर इससे छुटकारा पाना चाहते थे। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि 1857 के आते–आते क्रांति पूरी तरह से अपरिहार्य हो गई थी। फलतः जहां कहीं भी अंग्रेजी फंदा कुछ ढीला या कमजोर दिखा, लोग उसे काटने दौड़ पड़े। दिल्ली की स्थिति की चर्चा करते हुए देहली उर्दू अखबार लिखता है कि 'दिल्ली के द्वारों से चींटियों और टिड्डियों की तरह से भीड़ घुस आई और लगी अंग्रेजों को मारने'। 11,12,13 और 16 मई को उन्होंने कोई 150 अंग्रेज (स्त्री,बच्चों समेत) मौत के घाट उतार दिए। 16 मई के बाद, 20 सितंबर तक, दिल्ली में अंग्रेजों का कोई वजूद नहीं रहा।

यहां एक बात और स्पष्ट करने की जरूरत है। क्रांति के दौरान सिपाहियों तथा आम आदमियों ने लड़ाई के मैदान को छोड़कर किसी भी अंग्रेज को बिना वजह कत्ल नहीं किया। दिल्ली के सिपाहियों ने अपने अंग्रेज अफसरों और उनके बीवी–बच्चों को खुद गाड़ी या घोड़े आदि देकर छावनी से सुरक्षित निकाला। दरअसल मार–काट आदि उन घरेलू नौकरों का काम था जो लगभग रोजाना साहबों और उनकी मेमों तथा बाबा लोगों से भद्दी–भद्दी गालियां और ठोकरें खाते थे। यह उन गरीबों का काम था जिनसे अंग्रेज बेगार लेते थे और हार–थककर सुस्ताने को 'हरामखोरी' कहकर उन पर कोड़े बरसाते थे। यह उन लोगों का काम था जिनकी बीवियों और बेटियों को ये लोग रखैल बनाकर रखते थे। और इन गरीब, मर्माहत लोगों की मार को सारी भारतीय कौम का गुनाह बताकर अंग्रेजों ने आंख और हृदय बंद करके जो मार इन पर डाली, उससे दुनिया के नादिरशाहों के पत्थर–कलेजे भी हिल उठते हैं। और ऊपर से तुर्रा यह कि अंग्रेज लोग इसे सभ्यता की लड़ाई– सभ्य और जंगली लोगों के बीच की लड़ाई–कहते हैं। वस्तुतः इसे उल्टा करके पढ़ने पर ऐतिहासिक सत्य उजागर होता है। इस समय अगर मोटे तौर पर देखें तो अंग्रेज, कुछ अपवादों को छोड़कर, बर्बर, जंगली जानवर (हिंसक) था और हिंदुस्तानी सभ्य, साफ और शालीन।

क्रांति के 150 वर्ष पूरे होने पर इसके रूप रंग के जानने–पहचानने के लिए जरूरी है कि हम इसका गहन अध्ययन करें। एक–एक बात को बारीकी से तोलें–परखें और सत्य क्या है और झूठ क्या है, उसकी सही पहचान करें। दूसरों के स्वार्थवश कहे को 'सत्य वचन' मानकर ढोए जाने के दिन अब लद जाने चाहिए। इतिहास का यह तकाजा है।

85, सैक्टर 23, गुडगांव

सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के तहत हिमाचल प्रदेश को केन्द्रीय सहायताः ग्रामीण विकास मंत्रालय ने सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के कार्यान्वयन के लिए मौजूदा वित्तीय वर्ष (2006–07) के दौरान हिमाचल प्रदेश के कुल्लू (51.12 लाख रुपये) और उना (32.31 लाख रुपये) जिलों को केन्द्रीय सहायता की दूसरी किस्त जारी की हैं।

यह सहायता अनुदान योजना खर्च के लिए है और इसका इस्तेमाल सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के दिशा–निर्देशों में निर्धारित शर्तों के अनुसार मंजूर कार्यों में किया जाएगा। केन्द्र और राज्य योजना खर्च को क्रमशः 75 और 25 के अनुपात में वहन किया जाता है।

केन्द्र द्वारा प्रायोजित सम्पूर्ण ग्रामीण योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों को अतिरिक्त दिहाड़ी रोजगार उपलब्ध कराया जाता है। इस योजना के तहत टिकाऊ सामुदायिक सम्पत्तियां, सामाजिक–आर्थिक बुनियादी ढांचे के निर्माण के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा का भी प्रावधान किया गया है। स्कीम के तहत राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों को हर वर्ष अनाज उपलब्ध कराया जाता है। ग्रामीण विकास मंत्रालय भारतीय खाद्य निगम को सीधे अनाज की कीमत अदा करता है।

बढ़ता जल संकट–गंभीर चुनौती

अनिता मोदी

समस्त स्थलीय और जलीय परितंत्रों में जीवों के उद्भव और पोषण के लिए जल आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हैं। अतः कहा भी गया है कि जल जीवन का जनक एवं पोषण हैं। पर्यावरण विशेषज्ञ स्मिथ ने भी जल के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि 'जल दुनिया का सबसे मूल्यवान संसाधन है।' विश्व के क्षेत्रफल का लगभग 70 प्रतिशत भाग जल से परिपूर्ण है, जिसमें पीने योग्य जल भाग तीन प्रतिशत है। पीने योग्य तीन प्रतिशत जल में से हम मात्र एक प्रतिशत जल का ही उपयोग कर पाते हैं। यह सम्पूर्ण जल निर्दिष्ट चक्र में चक्कर लगाता रहता हैं। आर्थिक विकास, बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण व हरित क्रांति के कारण जल संकट व जल प्रदूषण निरंतर बढ़ता

बढ़ता जल संकट–घटता जल स्तर

जा रहा है, जिससे यह जल चक्र विकृत हो रहा है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 2003 को अंतर्राष्ट्रीय स्वच्छ जल वर्ष घोषित करके सम्पूर्ण विश्व को बढ़ते जल संकट व जल प्रदूषण के प्रति आगाह किया था। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार पीने के लिए उपलब्ध तीन प्रतिशत जल का 70 प्रतिशत भाग दूषित हो चुका है। अतः स्वच्छ पेयजल प्रबंधन 21वीं सदी की एक गंभीर व सामयिक चुनौती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के वैश्विक पर्यावरण परिदृश्य प्रतिवेदन के अनुसार आज विश्व में 1.1 अरब लोग स्वच्छ पेयजल से वंचित हैं, इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए मेलबोर्न में आयोजित पर्यावरणीय सम्मेलन एनवायरो 2002 में सभी देशों को आगाह किया गया है कि पूरी दुनिया के सामने अगले 50 वर्षों में शुद्ध जल की आपूर्ति करना बहुत बड़ी चुनौती होगी। संयुक्त राष्ट्र संघ ने खतरे की घंटी के संकेत देते हुए चेतावनी दी है कि यदि विश्व में समुचित जल प्रबंधन नहीं किया गया तो जल के लिए भीषण संघर्ष भी संभव है।

हमारे देश भारत में भी जल संकट ने गंभीर रूप धारण कर लिया है। जल संकट की भयावहता के प्रति सचेत करते हुए वाशिंगटन स्थित वर्ल्ड वॉच इंस्टीट्यूट ने भी कहा है कि भारत में 2020 के बाद गंभीर जल संकट पैदा हो सकता है। बढ़ते जल संकट की झलक भारत में तेजी से घटते हुए प्रति व्यक्ति जल की औसत उपलब्धता स्पष्ट होती है। केन्द्रीय जल संसाधन मंत्रालय के आकड़े के मुताबिक देश में प्रति व्यक्ति पानी की औसत उपलब्धता 1950 में 5000 क्यूबिक लीटर थी जो घटकर 2005 में 1869 क्यूबिक लीटर हो गई है। वर्ष 2025 में प्रति व्यक्ति और 1000 क्यूबिक लीटर रह जाने का अनुमान है। हकीकत में यह तथ्य खतरे के आगमन के संकेत है जिसके समाधान के लिए तत्काल प्रभावी कदम उठाने की नितांत आवश्यकता है अन्यथा यह समस्या भीषण रूप धारण कर लेगी। यही नहीं, जहां हमारे देश में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता कम होती जा रही है वही दूसरी और जल की मांग निरंतर बढ़ती जा रही है। बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण व जल का विभिन्न कार्यों में अनावश्यक दुरुपयोग बढ़ती जल मांग के लिए जिम्मेदार है। वन क्षेत्रों की अंधाधुंध कटाई, भूमिगत जल का बेतहाशा दोहन, परम्परागत जल स्रोतों की निरंतर उपेक्षा, समुचित जल प्रबंधन का अभाव आदि के कारण इस बढ़ती जल मांग से गंभीर जल संकट उत्पन्न होता जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान के सर्वेक्षणों के अनुसार भारत में अगले 20 वर्षो में जल की मांग 50 प्रतिशत बढ़ जायेगी जिसकी पूर्ति करना गंभीर समस्या होगी।

भारत में बढ़ती जल की मांग को पूर्ण करने के लिए सतही जल की अपेक्षा भूमिगत जल का अनियंत्रित मात्रा में दोहन किया जा रहा है। हमारे देश में उपयोग योग्य भूमिगत जल की अनुमानित मात्रा 4.53 करोड़ हैक्टेयर मीटर प्रतिवर्ष है जिसमें से 68.3 लाख हैक्टेयर मीटर पेयजल के रूप में उद्योगों व अन्य कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जबकि शेष 3.85 करोड़ हैक्टेयर मीटर भूमिगत जल का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता है। वर्तमान में, ग्रामीण क्षेत्रों में

पेयजल का 90 प्रतिशत भाग व सिंचाई का 40 प्रतिशत भाग भूमिगत जल से ही प्राप्त हो रहा है। भारत में जल निष्कासन की अद्यतन तकनीक बोर वैल से भू–जल की बेतहाशा निकासी की जा रही है। भूमिगत जल की अंधाधुंध निकासी के कारण भू–जल स्तर काफी नीचे चला गया है, कुएं सूख गए हैं, हैंडपम्प व नलकूपों ने भी जल की कमी के कारण काम करना बंद कर दिया है। ऐसा अनुमान है कि वर्ष 1970 से प्रतिवर्ष पौने दो लाख ट्यूब वैल लगाकर कृषि, उद्योग व घरेलू उपयोग हेतु भू–जल दोहन किया जा रहा है। वर्तमान में केवल फसलों की सिंचाई करने के लिए प्रतिवर्ष एक लाख नये नलकूप लगाये जाते हैं जिसके भविष्य में बहुत खतरनाक प्रभाव होगें। चिंता का विषय है कि भूमिगत जल का अविवेकपूर्ण व अनियंत्रित दोहन होने के कारण पूरी दुनिया में जल स्तर औसतन दस फुट नीचे चला गया है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि जो वस्तु निःशुल्क या कम कीमत पर सुलभ हो उसका दक्ष व पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है, ऐसा ही भूमिगत जल संदर्भ में हो रहा है। एक शोध ने इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया है कि यदि कृषि उत्पादन में समुचित जल निकासी एवं जल उपयोग के वैज्ञानिक तरीके अपनाए जाए तो 20 प्रतिशत तक जल बचत संभव है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि किसान वैज्ञानिक जानकारी के अभाव में कृषि कार्यों के लिए 15 प्रतिशत अधिक जल का अनावश्यक प्रयोग करते हैं। यही नहीं, देश में सिंचाई योजनाओं के रख–रखाव व संरक्षण में कमी के कारण सिंचाई के लिए निकाले गये कुल जल का 45 प्रतिशत जल खेत तक पहुंचते–पहुंचते नालियों में रिस जाता है और केवल 55 प्रतिशत जल का उपयोग ही हो पाता है।

स्वीडन में आयोजित जल सम्मेलन में इस तथ्य को चिंताजनक बताया गया है कि एशिया महाद्वीप के किसानों ने कुओं के माध्यम से जल निष्कासित करके इस महाद्वीप के भूमिगत जल संसाधन को समाप्त प्रायः कर दिया है। जिससे आने वाले दशकों में अकाल पड़ने की संभावना काफी बढ़ गई है। टाटा एनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट ने अपने अध्ययन में यह संकेत दिया है कि भारत में गुजरात के मेहसाणा और तमिलनाडु के कोयम्बटूर जिलों में भू जल स्रोत स्थायी तौर पर सूख चुके हैं। ऐसा भी अनुमान लगाया गया है कि इन राज्यों के 95 प्रतिशत से ज्यादा क्षेत्रों में भूमिगत जल स्तर तेजी से घट रहा है, परिणामतः डार्क जोन एरिया में वृद्धि होती जा रही है। आज देश के 50 प्रतिशत जिले पानी की दृष्टि से सूखे क्षेत्रों की श्रेणी में शामिल है। यहीं नहीं उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, महाराष्ट्र व पंजाब में भी भू–जल स्तर 40 फीट तक नीचे तक चला गया है जिससे इन प्रदेशों के भूखंड रेगिस्तान में तब्दील होते जा रहे हैं। भू–जल के अति दोहन से राजस्थान की राजधानी जयपुर के रामगढ़ बांध तथा मावड़ा में तो धरती तक फटने लगी है। भू–जल वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि जयपुर में आने वाले पांच–दस वर्षों में तथा सम्पूर्ण राजस्थान में 2025 के बाद भू–जल भंडार खत्म हो जायेंगे। इस चेतावनी का मुकाबला करने के लिए अभी से वैकल्पिक उपायों की खोज करते हुए ठोस व रचनात्मक कार्यनीति बनाने व क्रियान्वित करने की आवश्यकता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की ग्लोबल एनवायरमेंटल आउटलुक ने जल संकट के लिए वनों की तेजी से होती हुई कटाई को उत्तरदायी ठहराते हुए बताया है कि वनों की कटाई के कारण मिट्टी की ऊपरी सतह बह जाने के फलस्वरूप कृषि योग्य दस प्रतिशत जमीन बंजर हो जायेगी तथा विश्व की आधे से अधिक आबादी पानी की कमी से प्रभावित होगी। इस रिपोर्ट में यह भी चौकाने वाले तथ्य उजागर किये गये हैं कि तीस साल बाद मध्यपूर्वी देशों में 95 प्रतिशत तथा अन्य एशियाई व प्रशांत क्षेत्र के देशों में 65 प्रतिशत लोग पेयजल की किल्लत का सामना करेंगें। यही नहीं, भूमिगत जल स्तर के तेजी से कम होने पर पारिस्थिति के असंतुलन का खतरा भी मंडराने लगा है। भू–जल की कमी से पृथ्वी की परतों में हवा का दबाब बढ़ जाने से भूकंप की संभावना काफी बढ़ जाती है। आजकल बढ़ते भूकंपों की संख्या इस तथ्य को तर्कसंगत सिद्ध कर रही है। इसके अतिरिक्त घटते भू–जल के कारण विभिन्न राज्यों, प्रदेशों व क्षेत्रवासियों के मध्य तनाव, संघर्ष व स्वहित की संकीर्ण भावनाएं निरंतर बढ़ती जा रही है, जिससे मानवीय मूल्यों व संवेदनाओं में गिरावट आती है। बढ़ते जल संकट से न केवल कृषि क्षेत्र के विकास में गिरावट आ रही है अपितु यह हमारे देश के सीमित संसाधनों पर भी बोझ है। सरकार को अन्य विकास मदों में कटौती करके जल प्रबंधन पर करोड़ों रुपये खर्च करने पड़ते है जिससे आर्थिक विकास प्रक्रिया पर कुठाराघात होता है। जल संकट से विद्युत उत्पादन, उद्योग व सेवा क्षेत्र सभी की विकास प्रक्रियाएं ठप्प हो जाती हैं।

जल संकट की समस्या भविष्य में विकराल रूप धारण कर लेंगी। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए हमें इस समस्या का निराकरण करने हेतु अभी से सतत व प्रभावी प्रयास करने होगें। मनुष्य सोना, चांदी व पैट्रोलियम के बिना जीवन जी सकता है किंतु पानी के बिना जीवन असंभव है, इसलिए यह समय की मांग है कि जल का उपयोग विवेकपूर्ण, संतुलित व नियमित ढंग से हो। इस सर्वव्यापी समस्या के निदान हेतु हमें निम्न बिंदुओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगाः–

- जल संरक्षण व बचत का संस्कार समाज में हर व्यक्ति को बचपन से ही दिया जाना चाहिए।
- भूमिगत जल के अविवेकपूर्ण व अनियंत्रित दोहन व नलकूपों के गहरीकरण पर प्रभावी रोक लगानी चाहिए। नये ट्यूबवैलों की खुदाई करने से पूर्व सरकार से अनुमति अवश्य ली जानी चाहिए।
- भू–जल के संवर्धन व संरक्षण हेतु सुव्यवस्थित वर्षा जल–संचयन प्रणाली विकसित की जाये। वर्षा जल के संग्रहण हेतु घर व स्कूलों में ही टांके, कुंड व भू–गर्भ टैंक वगैरह निर्मित करने की नीति क्रियान्वित की जाये। परम्परागत जल स्त्रोतों कुएं, बावड़ी, तालाब, जोहड़ आदि की तलहटी में जमे गाद को निकलवाने के कार्य को प्राथमिकता दी जाये व साथ ही इनके पुनरूद्धार की व्यवस्था प्राथमिकता के आधार पर की जाए ताकि ये मृतप्रायः जल स्त्रोत पुनर्जीवित होकर वर्षा के जल को संग्रहित व संरक्षित कर सके।
- जल प्रबंधन, जल संरक्षण व जल की बचत आदि कार्यक्रमों को जन जागरण व जन आंदोलन के रूप में चलाया जाए। गैर सरकारी संगठनों, स्कूलों व महाविद्यालयों आदि को भी विचार गोष्ठी, सेमीनार व रैलियों के माध्यम से जल संरक्षण चेतना जागृत करनी चाहिए ताकि जल का अनुकूलतम उपयोग संभव हो सके। वनों की कटाई को रोकने के लिए हर संभव प्रयास किये जाने चाहिए व साथ ही 'वृक्षारोपण कार्यक्रम' को अधिक प्रभावी बनाने हेतु कठोर कदम उठाने चाहिए।
- घरों में विद्युत मीटर की भांति जल मीटर लगाया जाए ताकि जल उपयोग की मात्रा के अनुरूप ही शुल्क निर्धारित किये जा सके।
- आज कृषि क्षेत्र जल का सर्वाधिक उपयोग करता है इसलिए यह आवश्यक है कि कृषि में पानी के अनुकूलतम उपयोग को बढ़ावा देने के लिए ड्रिप व स्प्रिंक्लर सिंचाई व्यवस्था व वैज्ञानिक कृषि सिंचाई प्रणाली को प्रेरित किया जाए।
- भारत में अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं जल प्रबंधन का महत्वपूर्ण कार्य संपादित कर रही है। औरंगाबाद जिले में श्री अन्ना हजारे, हिमालय क्षेत्र के श्री सुन्दरलाल बहुगुणा व राजस्थान में श्री राजेन्द्र सिंह ने अपने अथक प्रयासों से यह सिद्ध कर दिया है कि जल संकट का निवारण जन सहयोग से आसानी से किया जा सकता है। मध्य प्रदेश के उज्जैन जिले में खेत का पानी खेत में रोकने की संरचना (ड़बरिया) का विकास करके खेती के लिए जल की व्यवस्था की गई है। इस व्यवस्था का अनुसरण अन्य राज्य करके जल संकट की समस्या से कुछ हद तक निजात पा सकते हैं।

आज विश्व में तेल के लिए युद्ध हो रहा है, भविष्य में जल के लिए युद्ध नहीं हो, इसके लिए हमें अभी से सजग, सतर्क व जागरूक रहते हुए जल संरक्षण व प्रबंधन की प्रभावी नीति बनाकर उसे क्रियान्वित करनी होगी। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीवन–शैली व प्राथमिकताएं इस प्रकार निर्धारित करनी होगी ताकि अमृत रूपी जल की एक भी बूंद व्यर्थ ना हो।

विभागाध्यक्ष (अर्थशास्त्र विभाग) जीएसएम गर्ल्स (पी.जी.) कालेज चिड़ावा

राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के तहत कम्प्यूटरीकरण परियोजना के लिए हरियाणा को केन्द्रीय सहायता:

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के तहत कम्प्यूटरीकरण परियोजना के लिए हरियाणा को वर्ष 2006–07 के लिए दूसरी किस्त के रूप में 4053 लाख रुपये के मूल आवंटन में से 20.26 करोड़ रुपये सहायता अनुदान के रूप में जारी किए हैं।

ग्रामीण जलापूर्ति के लिए केन्द्र द्वारा निर्धारित कुल धनराशि में से 15 प्रतिशत निगरानी व रखरखाव के लिए तथा पांच प्रतिशत धनराशि प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न स्थिति से निपटाने के लिए रखी जाती है। यह सहायता इसी धनराशि में से दी गई है।

राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के तहत कम्प्यूटरीकरण परियोजना के लिए हिमाचल प्रदेश को केन्द्रीय सहायता:

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के तहत कम्प्यूटरीकरण परियोजना के लिए हिमाचल प्रदेश को वर्ष 2006–07 के लिए दूसरी किस्त के रूप में 54.09 लाख रुपये सहायता अनुदान के रूप में जारी किए हैं।

राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के तहत कम्प्यूटरीकरण परियोजना के लिए असम को केन्द्रीय सहायता:

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के तहत आईईसी और एचआरडी गतिविधियों के लिए असम को वर्ष 2006–07 के लिए पहली किस्त के रूप में 1.72 करोड़ रुपये सहायता अनुदान के रूप में जारी किये हैं। इस धन राशि में रु. 93.97 लाख रुपये आईईसी गतिविधियों के लिए और शेष 78.05 लाख रुपये एचआरडी गतिविधियों के लिए जारी की गई है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

सुरेश लाल श्रीवास्तव

औद्योगिक क्रान्ति के बलबूते भूमंडलीकरण के दौरे में प्रवेश कराने, पूंजीपतियों, शासकों–प्रशासकों, मिल–मालिकों के लिए ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जीने के साधनों को जुटाने वाले विश्व–विकास के मूल आधार, 'श्रमेव जयते', को चरितार्थ करने वाले दृढव्रती, तपी श्रमकारों और कृषिकारों के कठोर श्रम साधना से ही किसी राष्ट्र–समाज की उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है।

विश्व जनसंख्या (6 अरब से ऊपर) की श्रम–शक्ति का एक बड़ा हिस्सा कृषकों एवं श्रमिकों का ही है। लोगों के लिए रोटी, कपड़ा और मकान का इन्तजाम करने में श्रमिकों और कृषकों की मुख्य भूमिका होती है। ऐसे में इनके जीवन की बदहाली या इन्हें इनके मानवीय मूल्यों से अपवंचित किया जाना राष्ट्र की अस्मिता से खिलवाड़ है। हमारे देश में भी हरित क्रान्ति, श्वेत–क्रान्ति, भूरी–क्रान्ति, नीली–क्रान्ति एवं पीत क्रान्ति तथा उससे भी बढ़कर औद्योगिक क्रान्ति, श्रमकारों की कठोर श्रम–संघर्ष की ही देन है। औद्योगिक क्रान्ति तथा सूचना प्रौद्योगिकी के इस प्रगतिवादी युग में मानव 21वीं सदी में वैश्वीकरण की वैचारिकता तथा कार्मिकता से मजबूती के साथ जुड़ता जा रहा है।

राष्ट्र संघ की स्थापना (1919) के साथ अस्तित्व में आया तथा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विशिष्ट अभिकरण के रूप में अपनाया जाने वाला अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन एक ऐसा विश्व अभिकरण हैं, जो श्रमिकों के जीवन कल्याण के प्रति विश्व मंच पर सतत् प्रयत्नशील एवं सजग प्रहरी है। इस अभिकरण के उद्भव, विकास, संरचनात्मक स्वरूप, उद्देश्य, कार्य–प्रणाली, उपलब्धियों इत्यादि का ब्यौरा इस प्रकार है–

ऐतिहासिकता

आधुनिक युग को प्रगति के पथ पर ले जाने वाले मजदूर वर्ग की उत्पत्ति औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुई है। मजदूर वर्ग ही किसी राष्ट्र के भविष्य निर्धारण की भूमिका का निर्वहन करते हैं, पूंजीपति तो उन्हीं के श्रम पर अट्टालिका खड़ी कर आनन्द लूटते है। शोषण की इसी विभीषिका के चलते 'समाजवाद' का जन्म हुआ। समाजवाद मजदूरों की दशा सुधारने का एक उन्नत सिद्धान्त है। इसी बीच पूंजीपतियों और मजदूरों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने के लिए 'साम्यवाद' एक नव सन्देश लेकर आया। 1917 की रूसी क्रान्ति इसी की देन थी। यहां क्रान्तिकारियों ने मजदूर वर्ग की दशा को उन्नत करने के लिए यह नारा दिया–"दुनियां के मजदूरों एक हो"।

रूसी क्रान्ति द्वारा सीख मिलने से प्रथम विश्व युद्व के बाद यूरोप के मजदूरों में काफी खलबली मची। पेरिस सम्मेलन में बैठे पूंजीपति देशों के प्रतिनिधियों को भी इस रूसी नारे ने चौंका दिया। अब उन्हें यह समझने में देर नहीं लगी कि यदि मजदूरों की दशा में सुधार नहीं किया गया तो सारा यूरोप साम्यवाद की लहर में डूब जायेगा। लेकिन संकट की इस दशा से उबारने का कार्य किसी एक देश के वश की बात नहीं थी, क्योंकि पारस्परिक प्रतियोगिता पूंजीवाद की सबसे घृणित विशेषता है। समस्या का समाधान विश्वव्यापी प्रयास से ही सम्भव था। पूंजीपतियों की सम्मिलित कोशिशों से मजदूरों की दशा में सुधार लाकर ही साम्यवाद की बाढ़ को रोका जा सकता था। इसी समयोचित भावना से प्रेरित होकर पेरिस शान्ति सम्मेलन में भाग लेने वाले राजनेताओं ने राष्ट्र संघ के अन्तर्गत एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की स्थापना की।

विश्व स्तर पर श्रम कानूनों में समानता लाने वाले तथा मजदूरों के कल्याण के इस अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ का प्रधान कार्यालय जेनेवा में कायम किया गया। संघ की सदस्यता के लिए राष्ट्र संघ की सदस्यता की अनिवार्यता नहीं थी। कोई भी राष्ट्र इसका सदस्य हो सकता था। प्रथम विश्व युद्ध (1914–1918) के बाद वर्साइल की सन्धि 1919 के भाग 13 के प्रावधानों के तहत 11 अप्रैल 1919 को अस्तित्व में आने के पश्चात राष्ट्र संघ से सम्बद्ध यह संगठन राष्ट्र संघ के अन्त के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन के पश्चात अपनी बढ़ती प्रासंगिकता के कारण इसके एक विशिष्ट अभिकरण के रूप में 14 दिसम्बर 1946 को पुनर्जीवित किया गया। वर्तमान में इसके सदस्य देशों की संख्या 177 हैं। वर्ष 1969 में इसकी 50वीं वर्षगांठ पर इसे नोबेल शान्ति पुरस्कार प्रदान किया गया। प्रति वर्ष एक मई विश्व श्रमिक दिवस के रूप में मनाया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का संविधान

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का संविधान चार अध्यायों में 40 अनुच्छेदों के अन्तर्गत व्यवस्थित है। प्रस्तावना पश्चात प्रथम अध्याय का विस्तार अनुच्छेद 1 से 13 के मध्य सांगठनिक स्वरूप के रूप में है, जबकि प्रक्रिया अभिकरण से सम्बन्धित दूसरे उल्लेख अनुच्छेद 35 से 38 के तहत् है। चौथे अन्तिम अध्याय में अनुच्छेद 39 व 40 के अन्तर्गत विविध प्रावधानों को रखा गया है।

सिद्वान्त तथा उद्देश्य–

विश्व के समस्त श्रमिकों के हितों की रक्षा करते हुए उनकी समस्याओं का समाधान करना ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रमुख उद्देश्य है। चूंकि विश्व शान्ति संस्थापना सामाजिक न्याय के द्वारा ही सम्भव है और श्रमिकों की समस्याओं को लेकर प्रायः अशान्ति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यही कारण है कि इस विश्व संस्था का दायित्व भार जिम्मेदारियों से भरपूर है। इसीलिए विशिष्ट अभिकरण 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' के माध्यम से श्रमिकों की समस्याओं का स्थायी हल निकालने का प्रयास किया गया। इस महत्वपूर्ण विषय पर 10 मई 1944 को फिलाडेलफिया में जो अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन हुआ उसमें सुनिश्चित किये गये सिद्वान्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुच्छेद एक के अन्तर्गत वर्णित है, जो इस प्रकार है–

- श्रम कोई वस्तु नहीं है।
- विश्व के किसी भाग की दरिद्रता अन्य सभी समृद्वि पूर्ण भागों के लिए खतरा एवं अशान्ति का प्रतीक है।
- श्रमिकों के हितों और सुविधाओं के सतत् प्रगति हेतु संगठन की तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता अनिवार्य रूप से आवश्यक है।
- अभाव तथा दरिद्रता निवारण हेतु प्रत्येक देश में उत्साह तथा साहस के साथ संघर्ष जारी किया जाना।

संगठन के चार्टर में निहित मौलिक सिद्वान्त

- श्रम को एक वस्तु या व्यापार की वस्तु न समझा जाए।
- सेवायोजकों और कर्मचारियों दोनों को ही सभी विधिक उद्देश्यों हेतु संगठन बनाने का अधिकार प्रदान किया जाए।
- उचित जीवन–निर्वाह हेतु समुचित वेतन व्यवस्था।
- कार्य अवधि 8 घंटे प्रतिदिन तथा सप्ताह में 48 घंटे से अधिक न हो।
- जहां व्यावहारिक हो सप्ताह में एक दिन का अवकाश अपनाया जाए।
- बाल श्रम समाप्त किया जाए।
- सिद्वान्त यह होना चाहिए कि समान कार्य के लिए समान वेतन मिलना चाहिए।
- विधि द्वारा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के श्रमिकों के साथ न्यायोचित व्यवहार के नियम बनाये जाए।
- निरीक्षण प्रणाली के द्वारा सभी श्रमिकों के संरक्षण के लिए बने कानूनों एवं व्यवस्थाओं का निरीक्षण किया जाए। निरीक्षण दल में महिलाओं को भी रखा जाये।

सामाजिक लक्ष्य–प्राप्ति सन्दर्भित सिद्वान्त

- पूर्ण रोजगार तथा जीवन–निर्वाह हेतु आवश्यक मजदूरी।
- सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था।
- पर्याप्त भोजन तथा आवास की उचित व्यवस्था।
- सामूहिक रूप से अपने हितों की रक्षा करना तथा सौदा करने का अधिकार।
- अवसरों की समानता।
- श्रमिकों तथा उनके आश्रितों के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा का उचित प्रबन्ध।

इस प्रकार फिलाडेलफिया की घोषणा (10 मई 1944) के प्रावधानों के अनुसार सभी विश्व–मानवों को जाति, सम्प्रदाय अथवा लिंग के भेद के बिना स्वयं के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास की ऐसी परिस्थितियों को फलीभूत करने का अधिकार है, जिसमें स्वातन्त्रय, सम्मान व मार्यादा हो और आर्थिक सुरक्षा के साथ–साथ अवसर की समानता भी हो।

सांगठनिक स्वरूप

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के तीन अंगों अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन, शासक निकाय व अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय के सांगठनिक स्वरूप का वर्णन आई.एल.ओ. के संविधान के अनुच्छेद.2 से 7 के अन्तर्गत किया गया है।

1. अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन– इसके माध्यम से श्रमिक नीतियों का निर्धारण किया जाता है। इसका गठन सदस्य राष्ट्रों के प्रतिनिधि मंडल द्वारा होता है। प्रतिनिधि मंडल द्वारा नीतियों का निर्माण तथा प्रस्तावों पर निर्णय का कार्य किया जाता है। प्रतिनिधि मंडल में प्रत्येक राज्य के चार–चार सदस्य होते हैं, जिसमें दो सरकारी प्रतिनिधि तथा शेष दो में से एक एक प्रतिनिधि कर्मचारियों तथा नियोजकों के होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन का वर्ष में कम से कम एक अधिवेशन जरूरी है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन आई.एल.ओ. की व्यवस्थापिका के रूप में कार्य करती है। सम्मेलन में संगठन का वार्षिक आय–व्यय भी पारित किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के इस सर्वोच्च अंग के सदस्य प्रत्येक तीन वर्ष के लिए मनोनीत किया जाते हैं। सदस्य राज्यों का उत्तरदायित्व होता है कि सम्मेलन में अपनाये गये अभिसमयों को अपनी राष्ट्रीय विधायिनी द्वारा लागू करें। सब संस्तुतियां तथा अभिसमय मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संहिता कहलाते हैं। इस अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कोड के 130 अभिसमय तथा 144 संस्तुतियां है।

2. व्यवस्थापिका अंग या कार्यकारिणी– आई.एल.ओ. के संविधान के अनुच्छेद 7 में निहित प्रावधानों के अनुसार सम्प्रति कार्यकारिणी अंग में 56 सदस्यों की व्यवस्था है इसमें 28 सदस्य विभिन्न राज्यों के 14 कर्मचारियों के तथा 14 नियोजकों के प्रतिनिधि होते हैं। प्रमुख औद्योगिक महत्व के राज्यों को स्थायी सदस्यता प्राप्त होती है, जिनकी संख्या वर्तमान में दस हैं। ये

राज्य है:– कनाडा, फ्रान्स, चीन, भारत, जर्मनी, इटली, जापान, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस। कार्यकारिणी अंग या शासक निकाय के सदस्यों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालय के लिए एक निदेशक का निर्वाचन किया जाता है, जिसे महानिदेशक कहते है। वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के महानिदेशक जुआन सोमाविया (चिली के मूल निवासी) हैं। महानिदेशक के निर्वाचन की विधिक व्यवस्था अनुच्छेद 8 में उपबन्धित है। शासक निकाय या कार्यकारिणी आई.एल.ओ. द्वारा पारित प्रस्तावों को सदस्य राज्यों से अनुसमर्थित कराने का कार्य करती है।

3. अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालय– अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के इस स्थायी सचिवालय का प्रधान महानिदेशक होता है। इसका प्रधान कार्यालय जेनेवा (स्विटजरलैंड) में है। कार्यालय की शाखायें न्यूयार्क, यूरोप तथा एशिया के कई देशों में भी है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय के स्टाफ की नियुक्ति का कार्य महानिदेशक करेगा, ऐसी व्यवस्था आई.एल.ओ संविधान के अनुच्छेद 9 में निहित है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालय का मुख्य कार्य औद्योगिक जीवन तथा श्रम के संबंध में संसूचनायें एकत्रित करना तथा व्यक्तिगत सदस्यों को सम्मेलन के नियमों के अनुसार विधि तथा नियम निर्मित करने में सहायता प्रदान करना होता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालय के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है–

- सामाजिक, आर्थिक तथा श्रम संबंधी समस्याओं तथा तत्संबंधी जटिल प्रश्नों पर अनुसंधान कार्य करना।
- सदस्य राज्यों को सामाजिक, आर्थिक तथा श्रम विषयक मामलों पर सलाह देना।
- श्रमिक संबंधी अभिलेखों को तैयार करना।
- श्रमिक सम्मेलनों तथा सभाओं का कार्यक्रम तैयार करना तथा उनके लिए सामग्री की व्यवस्था करना।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्य एवं उपलब्धियां

इस संगठन का मुख्य कार्य विश्व के श्रमिकों को सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के मार्ग पर ले जाना है। श्रमिकों के श्रम के महत्व एवं मूल्य को समान कार्य के लिए समान वेतन के अधार पर निर्धारित करने का प्रयास करना। इन कार्यों एवं उपलब्धियों को निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत् समझा जा सकता है।

1. अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य अभिसमयों तथा संस्तुतियों के रूप में श्रम संबंधी दशा एवं उनके मानदंडों को पारित कराना है। ऐसे बहुत से अभिसमयों तथा संस्तुतियों का अनुसमर्थन सदस्य राज्यों द्वारा किया जा चुका है। इनमें से अधिकांश अभिसमय निम्न विषयों से संबंधित होते है–

- बेकारी एवं सेवाओं की सामान्य शर्तो से संबंधित नियम।
- कार्य करने के घंटे।
- वेतन संबंधी मानदंड तथा भुगतान संबंधी नियम।
- सप्ताह में अवकाश के समय व दिन।
- वार्षिक अवकाश।
- संघ निर्माण करने के अधिकार।
- खानों में स्त्रियों को कार्य में न लगाने के नियम।
- बेगारी के विरूद्ध नियम।
- बालकों को सेवाओं में रखने विषयक नियम।
- सामाजिक तथा आर्थिक सुरक्षा।
- स्वास्थ्य आदि।

2. प्राविधिक सहायता आई.एल.ओ. द्वारा विभिन्न सदस्य देशों को प्राविधिक सहायता भी प्रदान की जाती है। प्राविधिक शिष्ट–मंडल भेजना, प्रशिक्षण व्यवस्था, प्रशिक्षण केन्द्र स्थापना, इसी अर्थ में छात्रवृत्तियां प्रदान किया जाना, विचार गोष्ठियों के आयोजन का कार्य भी इन्टरनेशनल लेबर आर्गेनाइजेशन के कार्यों एवं उपलब्धियों में शामिल है। जैसा कि म्यॉमार, चीन, भारत, पाकिस्तान, टर्की, मिश्र, इंडोनेशिया, थाईलैंड, हैती तथा यूगोस्लाविया आदि देशों में प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये जा चुके है।

3. अनुसंधान कार्य– श्रमिकों की दशा सुधारने के निमित्त अनेक अनुसंधान तथा प्रयोग कार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों के अन्तर्गत है।

4. क्षेत्रीय कार्य– इन्टरनेशनल लेबर आर्गेनाइजेशन का प्रधान कार्यालय यद्यपि जेनेवा में है तथापि इसके द्वारा क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थापित किये गये है। एशिया के लिए भारत के बंगलौर, दक्षिण अमेरिका के लिए पीरू के लीमा तथा मध्य अमेरिका के लिए मैक्सिको नगरों में क्षेत्रीय कार्यालय खुले है। संगठन द्वारा समय–समय पर क्षेत्रीय सम्मेलनों का आयोजन भी किया जाता है। 1947 में एशिया महाद्वीप का प्रथम सम्मेलन नई दिल्ली में हुआ। दूसरा 1950 में श्रीलंका में, जबकि तीसरा 1953 में जापान में हुआ।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ एक अत्यन्त प्रभावकारी सफल अन्तर सरकारी संस्था एवं विशिष्ट अभिकरण है, जिसके द्वारा श्रम के क्षेत्र में सामाजिक न्याय सम्प्राप्ति का सराहनीय कार्य किया जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय विधायिनी की दशा में 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक कोड' एक महत्वपूर्ण कदम है। इसकी खास विशेषता यह है कि इसमें न केवल राज्य सरकारों वरन् प्रबन्धकों तथा श्रमिकों का भी प्रतिनिधित्व है।

'शिक्षक' राजकीय बालिका इंटर कालेज, जलालपुर, अम्बेडकर नगर (उ.प्र.)

ग्रामीण विकास में पर्यटन का योगदान

सुभाष सेतिया

जाहिरा तौर पर यह बात अजीब लग सकती है कि ग्रामीण विकास में पर्यटन का भी कोई योगदान हो सकता है। पर्यटन की बात करते ही हमारे मन मस्तिष्क में जो तस्वीर उभरती है उसमें रेल यात्रा, हवाई यात्रा, होटल, ऐतिहासिक किले, महल गुफाएं, मूर्तियां, नदियां, तीर्थ स्थान, समुद्री तट, बड़े–बड़े उद्यान व पार्क, पक्षी और वन्य प्राणी अभयारण्य जैसी चीजें तो शामिल होती हैं परन्तु गांव दूर–दूर तक नजर नहीं आते। असल में पर्यटन अब केवल मन–बदलाव या तीर्थाटन का साधन न रहकर एक पूर्ण व्यवसाय और उद्योग बन चुका है जिससे बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा की कमाई होती है और लाखों लोगों को तरह–तरह का रोजगार मिलता है। हालत यह हो गयी है कि छोटे–बड़े सभी देश अधिक से अधिक विदेशी सैलानियों को अपने यहां बुलाने के लिए दुनिया भर के अखबारों, रेडियो, टेलीविजन पर, विज्ञापनों पर पानी की तरह धन बहाते हैं। पर्यटन के इस विश्वव्यापी स्वरूप में ग्रामीण विकास का उल्लेख अजीब लगे तो अस्वाभाविक नहीं है।

ग्रामीण विकास में पर्यटन के योगदान को संभव बना रही है एक नई अवधारणा जिसे ग्रामीण पर्यटन कहा जाता है। हमारे देश में हाल में ही अस्तित्व में आई इस अवधारणा के तहत ग्रामीण अंचलों में मौजूद सांस्कृतिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक महत्व के स्थलों तक देश–विदेश के सैलानियों को लाने का प्रयास किया जाता है। पर्यटन की दृष्टि से इस अवधारणा का उद्देश्य गांवों के अज्ञात दर्शनीय स्थलों को पर्यटन नक्शे पर लाना है किन्तु परोक्ष रूप से इससे गांवों के विकास को बल मिलेगा। जिस तरह दस साल पहले कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि रिक्शा वाला भी मोबाइल फोन का इस्तेमाल करेगा उसी तरह आज अजीब लगने वाली ग्रामीण पर्यटन की अवधारण अगले कुछ वर्षों में हमारे सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन का अभिन्न अंग बन जाए तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। आइए पहले यह समझ लें कि पर्यटन की इस नई शाखा का गांवों से या गांवों के विकास से क्या रिश्ता है।

जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है कि पर्यटन से अभिप्राय है ऐतिहासिक स्थानों, मंदिरों, तीर्थ स्थलों, प्राचीन इमारतों आदि को देखने के लिए घूमना–फिरना और घर से दूर बाहर होटलों, धर्मशालाओं, लॉज आदि में ठहर कर स्थानीय प्रकृति, हरियाली और रमणीय वातावरण का आनंद उठाना। इसके लिए आमतौर पर बड़े–बड़े शहरों में और विदेशों में जाने का प्रचलन है। यही गतिविधियां जब शहरों से गांवों में स्थानांतरित हो जाएं तो उसे ग्रामीण पर्यटन कहा जाएगा।

भारत के पर्यटन विकास पर पिछले कई दशकों से विशेष ध्यान दिया जा रहा है और इसके प्रोत्साहन को राष्ट्रीय योजना का महत्वपूर्ण अंग बनाया गया है। सरकारी और गैर–सरकारी स्तर पर किए गए प्रयासों के फलस्परूप देश के विभिन्न भागों में पर्यटकों के लिए आवश्यक सुविधाओं के विस्तार में प्रगति हुई है। किन्तु ये सभी कदम उठाते हुए नीति–निर्धारकों के सामने परंपरागत पर्यटन स्थल जैसे कि पर्वतीय स्थल, समुद्री तट पर बसे शहर, ऐतिहासिक महत्व की इमारतें, उद्यान आदि ही रहते थे। अब पर्यटन की सीमा का विस्तार करते हुए उसमें ग्रामीण क्षेत्र भी शामिल हो गए हैं। पहले पर्यटन स्थलों के लिए बने मार्गों पर पड़ने वाले कुछ गांव ही सीमित स्तर पर पर्यटन संबंधी गतिविधियों से लाभ उठा पाते थे। अब गांवों को पर्यटकों की मंजिल यानी 'डेस्टीनेशन' बनाया जा रहा है। इस नई अवधारणा के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में फैले ऐतिहासिक स्मारकों, सांस्कृतिक तथा धार्मिक स्थलों में लोक उत्सवों आदि के बारे में देश–विदेश में जानकारी देकर सैलानियों को आकर्षित किया जाएगा। साथ ही इन केन्द्रों को विकसित किया जाएगा और इनके आस–पास बुनियादी सुविधाओं का प्रबंध किया जाएगा। अब तक पर्यटक ग्रामीण या पर्वतीय क्षेत्रों में कुछ इमारतों या कलाकृतियों को देखकर शहर में रात बिताते हैं। नई अवधारणा का बीज बिंदु यह है कि पर्यटक ग्रामीण क्षेत्रों में ही टिक कर

वहां के जन–जीवन को देखें और वहां के प्राकृतिक सौंदर्य व सांस्कृतिक वैभव का आनंद लें। इस अवधारणा को ठोस रूप देने के लिए केन्द्रीय पर्यटन मंत्रालय व्यापक स्तर पर योजना बना रहा है।

जून 2006 के पहले सप्ताह में ग्रामीण पर्यटन के विस्तार के बारे में नई दिल्ली में एक कार्यशाला आयोजित की गई। इसका उद्घाटन करते हुए पर्यटन मंत्री श्रीमती अंबिका सोनी ने बताया कि शुरू में ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा देने की 32 परियोजनाएं देश भर में चलाई जा रही हैं। इनमें प्रमुख हैं आंध्र प्रदेश में पोद्दापल्ली की इकाट कला, श्री कालाहस्ती कलमकारी, असम के दुर्गापुर में रेशमी वस्त्र, सुआल कुट्टी के वस्त्र और दर्शनीय स्थल, बिहार में नेपुरा की बारीक बुनाई, छत्तीसगढ़ में बस्तर क्षेत्र में चित्रकोट तथा नगरनार के वनक्षेत्र और टेरोकोटा कला, हरियाणा में ज्योतिसर की दरियां व धार्मिक स्थल, हिमाचल प्रदेश में नग्गर की हस्तकला व धार्मिक उत्सव, कर्नाटक में अनेगुंदी का ग्रामीण परिवेश, बनावासी की चंदन लकड़ी धानु व कुंभ कला, केरल में अशनमुला की अद्वितीय दर्पण कला आदि। इनके अलावा राजस्थान तथा कुछ अन्य राज्यों में ग्रामीण कलाओं के विकास पर जोर दिया गया है। इन परियोजनाओं का एक उल्लेखनीय पहलू यह है कि इनके लिए संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू एन डी पी) से आर्थिक मदद मिल रही है। आर्थिक मदद देने के साथ–साथ यू एन डी पी ने इन परियोजनाओं के त्वरित क्रियान्वयन के उद्देश्य से एक साफ्टवेयर विकसित किया है। इस साफ्टवेयर की मदद से इन स्थानीय कलाओं में नई पीढ़ी के शिल्पकारों को प्रशिक्षित किया जाएगा ताकि ग्रामीण सांस्कृतिक विरासत का विस्तार जल्दी तथा बेहतर ढंग से हो। अभी तक कलाओं का प्रशिक्षण केवल पारिवारिक स्तर पर होता है। अब यह प्रशिक्षण परिवार से बाहर निकल कर अन्य परिवारों, समुदायों तथा जातियों के बच्चों को भी मिल सकेगा। इससे ग्रामीण कलाओं का विस्तार तो होगा ही साथ में अधिकाधिक लोग नए–नए कौशल सीखकर रोज़गार भी पा सकेंगे।

ग्रामीण कलाओं व शिल्पों के संस्कार, परिष्कार तथा विस्तार के अलावा ग्रामीण अंचलों में मौजूद सांस्कृतिक स्मारकों की देखभाल तथा उनमें सुधार का काम भी हाथ में लिया जाएगा। इन 32 परियोजनाओं में शामिल सभी ग्रामीण पर्यटन स्थलों और उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं की जानकारी टूर आपरेटरों को दी जाएगी जिससे वे संभावित सैलानियों को इन स्थलों पर आने के लिए प्रेरित कर सकेंगे। यह सारी जानकारी वेबसाइट पर भी उपलब्ध कराई जाएगी। यह काम अक्टूबर 2006 तक पूरा कर लेने का लक्ष्य था। जिन 32 क्षेत्रों को ग्रामीण पर्यटन के विकास के लिए चुना गया है उनमें अधिकतर स्थान ऐसे हैं जो किसी प्रमुख पर्यटन स्थल के मार्ग में पड़ते हैं। यह निर्णय इसलिए किया गया है कि सैलानी अपने टूर कार्यक्रम में इन स्थानों को आसानी से शामिल कर लें। ग्रामीण पर्यटन की लोकप्रियता बढ़ जाने के बाद सुदूरवर्ती ग्रामीण स्थलों को भी पर्यटन केन्द्र के रूप में विकसित किया जाएगा।

ऊपर जिस कार्यशाला का उल्लेख किया गया है उसमें पर्यटन मंत्री ने स्पष्ट किया कि उनके मंत्रालय के ये प्रयास केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा 1,74,000 करोड़ रुपए की प्रतिष्ठित भारत निर्माण योजना तथा अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से एकदम अलग होंगे और ये उनके पूरक के रूप में काम करेंगे। इनमें मुख्य जोर गांवों की कलाओं, हस्तशिल्प और सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण व विकास पर दिया जाएगा। इसके अलावा इन स्थानों पर बुनियादी सुविधाएं जैसे कि सड़क, संचार, आवास स्वच्छ पेय जल आदि का भी प्रबंध करना होगा। इन सुविधाओं के निर्माण से गांवों में रोज़गार के अवसर बढ़ेंगे और साथ ही ग्रामीण लोगों को बेहतर बुनियादी सुविधाएं मिल जाने से उनका जीवन स्तर बेहतर होगा। जब इन गांवों को देखने और वहां रहने के लिए बाहर से सैलानी आएंगे तो स्थानीय लोगों को अपने गांवों का रूप निखारने और रहन–सहन की परिस्थितियां सुधारने की प्रेरणा भी मिलेगी। उनमें स्वाभिमान और आत्मगौरव का भाव सुदृढ़ होगा और वे अपने क्षेत्र को अधिक विकसित व खुशहाल बनाने की कोशिश करेंगे। इस प्रकार गांव वालों के अपने प्रयासों, सांस्कृतिक विभागों द्वारा ग्रामीण दर्शनीय स्थलों के संरक्षण एवं सुधार के उपायों तथा राज्य सरकारों व पंचायतों द्वारा विभिन्न बुनियादी सुविधाओं के विकास पर किए जाने वाले निवेश के फलस्वरूप इन क्षेत्रों की प्रगति को काफी बढ़ावा मिलेगा।

ग्रामीण पर्यटन की योजना ग्रामीण विकास के अन्य कार्यक्रमों से इस मायने में भी अलग है कि इसमें सरकारी सहायता, अनुदान या ऋण आदि के जरिए नहीं बल्कि सहज–सरल आर्थिक गतिविधियों के सहारे गांवों का उत्थान होगा। इसमें बिचौलियों या नौकरशाहों के हस्तक्षेप या भ्रष्टाचार की गुंजाइश भी बहुत कम रहेगी। इस प्रकार ग्रामीण पर्यटन की इस अभिन्न अवधारणा से देहात में फैले सांस्कृतिक वैभव को संपन्न करने के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों के अर्थिक पुनर्निर्माण को गति मिलेगी। जानकारों का यह भी कहना है

कि ये सभी प्रयास भारतीय गांवों की सबसे गंभीर समस्या शहरों की ओर पलायन पर अंकुश लगाने में भी सहायक होंगे।

परन्तु गांवों के लोगों और प्रशासन को इस योजना को सफल बनाने के लिए कुछ विशेष बातों पर ध्यान देना होगा। वैसे तो हमारे यहां अतिथि देवो भव की पंरपरा है और अनेक विदेशी सैलानी स्वीकार करते हैं कि वे भारतीय लोगों की आत्मीयता और आतिथ्य सत्कार से बहुत प्रभावित हैं किन्तु कभी–कभी विदेशी सैलानियों के साथ दुर्व्यवहार की कुछ ऐसी घटनाएं सुनने–पढ़ने को मिलती है जिनसे आम देशवासी का सिर शर्म से झुक जाता है। पर्यटक विदेशी हो या स्वदेशी, वह हमारा मेहमान है और उसके आत्म–सम्मान, अस्मिता, भावनाओं और मान–मर्यादा की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। जाहिर है ग्रामवासियों का सैलानियों के प्रति व्यवहार और आचरण भला और सद्भावपूर्ण रहना चाहिए। साथ ही सफाई की व्यवस्था पर खास ध्यान देना होगा। हमारे देश के अधिकांश गांवों में स्वच्छता की स्थिति अच्छी नहीं रहती। अतः पर्यटन की दृष्टि से चुने गए क्षेत्रों में इस पहलू पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व के स्मारकों का संरक्षण भी आम ग्रामवासी की चिंता का विषय होना चाहिए। इसे केवल पुरातत्व विभाग या सरकारी अधिकारियों के भरोसे नहीं छोड़ा जाना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये इमारतें अब सांस्कृतिक गौरव के साथ–साथ आर्थिक एवं भौतिक विकास का साधन भी बन रही हैं। इसलिए इनका संरक्षण तथा रख–रखाव सभी लोगों का दायित्व होगा। यदि पर्यटन मंत्रालय, राज्य सरकारें, पंचायतें और ग्रामवासी इन बातों का ध्यान रखते हुए ग्रामीण पर्यटन की इन परियोजनाओं को सफल बनाने के लिए अपेक्षित प्रयास करेंगे तो जल्दी ही ग्रामीण पर्यटन हमारे राष्ट्र के मुख्य पर्यटन व्यवसाय का अभिन्न अंग बन जाएगा और इसके गांवों के चहुंमुखी विकास को बढ़ावा मिलेगा। किन्तु ग्रामीण पर्यटन के विकास की परियोजनाओं पर अमल करते हुए भी ध्यान रखना होगा कि सैलानियों की सुख–सुविधा का प्रबंध करने में वे इतना आगे न बढ़ जाएं की गांव शहर ही दिखाई देने लगें। गांवों की बुनियादी पहचान और स्वरूप को बनाए रखना जरूरी है नहीं तो ग्रामीण पर्यटन की अवधारणा ही विफल हो जाएगी।

सी–302 हिन्द अपार्टमेंट्स, प्लाट नं. 12, सेक्टर–5, द्वारका, नई दिल्ली–110075

KH-05/07/02

लोक प्रशासन

(हिन्दी माध्यम)

By

Atul Lohiya

(A person who believes in scientific approach and hard work)

UGC-NET

QUALIFIED IN TWO SUBJECTS

(HISTORY & PUB. ADMINISTRATION)

अतुल लोहिया ही क्यों? क्योंकि...

केवल हम कराते हैं लोक प्रशासन का सम्पूर्ण एवं समग्र अध्ययन;

- *UPSC के साथ UP, MP, Raj., Bihar, Uttaranchal, Jharkhand Chhattisgarh, Haryana, Himachal PCS की भी तैयारी;*
- बेहतर समझ, बेहतर नोट्स एवं बेहतर प्रश्न अभ्यास तथा लेखन-शैली के विकास के समन्वित दृष्टिकोण पर आधारित मार्गदर्शन। अध्यापन की शैली-विशिष्ट व वैज्ञानिक।
- लोक प्रशासन से संबंधित समसामयिक, किन्तु आवश्यक एवं उपयुक्त जानकारियों का समावेश।
- अनावश्यक तथ्यों के संकलन द्वारा लोक प्रशासन को बोझिल बनाने के स्थान पर एक सरल तथा सुरूचिपूर्ण विषय के रूप में समझाने पर विशेष बल।
- नोट्स - वैज्ञानिक तरीके से तैयार पूर्णतः संशोधित, परिमार्जित एवं परिवर्धित, (Pre. और Mains के लिए अलग-अलग) संदर्भ : 80 से 85 स्रोत;
- **केवल हमारे नोट्स से प्रतिवर्ष UPSC (Pre.) में 112 से 115 प्रश्न तथा मुख्य परीक्षा में 80 प्रतिशत से अधिक प्रश्न आए;**
- Revision Notes - चार्ट के रूप में उपलब्ध कराने वाले एकमात्र शिक्षक;
- हम देते हैं प्रत्येक क्लास का 40 प्रतिशत समय प्रश्न अभ्यास में और शेष समय विषय की बेहतर समझ एवं छात्रों की परिपक्व सोच को विकसित करने में।
- इसके अतिरिक्त आप प्राप्त कर सकते हैं – प्रतियोगी वातावरण, कुशल परिचर्चा समूह, और भी...
- लोक प्रशासन हिन्दी माध्यम में परिणामों में भी सबसे आगे...

Prakash Chandra
SDM Uttaranchal-2002

Arvind Kumar
UPSC-2003

A.P.S. Yadav
UPSC-2004

Virendra Kumar
Essay+Interview (A.C.)

Lokesh Lilhare
UPSC-2005

Pramod K. Dubey
Topper, UPPCS '04

रीतेश चौहान-लोक प्रशासन (यू.पी.एस.सी.-05) में हमारे संस्थान के अधिकतम अंक प्राप्तकर्ता-334 (प्रथम प्रश्न पत्र-178, द्वितीय प्रश्न पत्र-156)

लोक प्रशासन ही क्यों? क्योंकि...

आप एक लोक प्रशासक बनने जा रहे हैं ;

- परीक्षा की चुनौतियों एवं बदलती परिस्थितियों के अनुरूप एक अंकदायी विषय
- भविष्य में सामान्य अध्ययन के अनिवार्य भाग के रूप में लोक प्रशासन को शामिल किए जाने की अधिकतम संभावना;
- वर्तमान समय में भी अंकों के खेल में सबसे आगेः आपका अध्ययन 600 अंकों के लिए, लेकिन आप हल कर सकेंगे एक हजार से अधिक अंकों के प्रश्नः वैकल्पिक विषय - 600 + निबंध - 200 + G.S. (Polity) - 90 + G.S. (Social Problem) + G.S. Current Affairs + साक्षात्कार
- प्रत्येक परीक्षार्थी द्वारा जिज्ञासावश भी अधिकांश सिलेबस का अध्ययन, जैसे - भर्ती, प्रशिक्षण, अलघ कमेटी, वेतन एवं सेवा शर्तें आदि।

JOIN FOUNDATION COURSE

MPPSC (Mains) के लिए विशेष बैच

New Batch (Delhi)
1st June, 2007
Admission Open from 21th May

लोक प्रशासन

Mains के साथ-साथ
Pre. के लिये भी बेहतर विकल्प

'अतुल लोहिया'

शिक्षक, मार्गदर्शक और मित्र भी

पत्राचार पाठ्यक्रम भी उपलब्ध

(पूर्णतः संशोधित, परिमार्जित एवं परिवर्धित कम्प्यूटराइज्ड नोट्स)

MAINS - 2500/-
MAINS + PRE. - 3500/-
डाक खर्च - 200/- अतिरिक्त

Send DD/MO in favour of Atul Lohiya

New Batch (Allahabad)
2nd Week of June
Admission Open from 21th May

"PRABHA"

AN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION

DOUBTLESS KNOWLEDGE, DESIRELESS SERVICE
प्रभा

105, VIRAT BHAWAN (MTNL BLDG.), NEAR BATRA CINEMA, MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
Phone : 27653498, 27655134, 32544250. Cell.: 9810651005 • e-mail: atulprabha@gmail.com
Branch : 305/250, COLONELGANJ, NEAR COLONELGANJ POLICE STATION, ALLAHABAD.

KH-05/07/03

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम

प्रमोद कुमार मिश्र

ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार पाने के इच्छुक व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने वाली नयी संचालित "राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना" (एन.आर.ई.जी.वाई) एक अनोखी और विशिष्ट प्रकार की योजना है। सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (एस.जी.आर.वाई.) तथा काम के बदले अनाज का राष्ट्रीय कार्यक्रम (एन.एफ.एफ.डब्लू.पी.) को इस योजना में समाहित कर लिया गया है। यह योजना 14 नवम्बर 2005 को देश भर के चुने हुंए जिलों में "पायलट योजना" के रूप में शुरू की गई थी जिसे 2 फरवरी 2006 को बतौर कानून की शक्ल देने के बाद देश भर के चुने हुए 200 जिलों में प्रारम्भ की गई है। अगले पांच वर्षों में इसे पूरे देश में लागू किये जाने का प्रावधान है।

इस योजना के अर्न्तगत काम की पहचान करने तथा उनके क्रियान्वयन की जिम्मेदारी ग्राम पंचायत को इसलिए निर्धारित की गई है क्योंकि ग्राम पंचायतें क्षेत्र की आवश्यकताओं और इच्छाओं को समझती है। ग्रामीण परिवारों को स्थानीय पंचायतों में अपना नाम इस कानून के तहत पंजीकरण कराना पड़ता है। एक बार नाम पंजीकृत हो जाने पर ग्राम पंचायत 'जॉब कार्ड' जारी कर देता है तथा कार्य मांगने के 15 दिन के भीतर उन्हें कार्य उपलब्ध कराना होता है। यदि 15 दिन में रोजगार नहीं मिल पाता है तो उन्हें बेरोजगारी भत्ता दिये जाने का प्रावधान है। प्रत्येक ग्रामीण परिवार को इस योजना के अर्न्तगत एक वर्ष में 100 दिन का रोजगार देने की गारंटी प्रदान की गई है। बाकी के दिनों में ग्राम्य विकास की अन्य योजनाओं के अर्न्तगत इच्छुक लोगों को काम

दिया जा सकेगा। इस योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम आधारित प्रोजेक्टस/कार्य सम्पादित कराने की व्यवस्था रखी गई है जिसमें मुख्य रूप से जल संरक्षण, जल संग्रहण, भूमि संरक्षण, सूखा और बचाव कार्य, वर्गीकरण और पौधरोपण, तालाबों, पोखरों की सिल्ट सफाई, ग्रामीण सड़कों और नालियों का निर्माण जैसे विकास कार्यों का पूर्ण कराया जाना है।

इस योजना की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैः

- प्रति मानव दिवस श्रम के लिए न्यूनतम 60 रुपये दैनिक के हिसाब से नकद राशि प्रति सप्ताह प्रदान किये जाने की व्यवस्था है।
- बेरोजगारी भत्ते की दर 30 दिन तक एक दिन की मजदूरी का 1/4 तथा 30 दिन से ऊपर एक दिन की मजदूरी की आधी राशि निर्धारित की गयी है।
- योजना में रोजगार हेतु कार्य मजदूरों के निवास स्थल से 5 किमी. क्षेत्र के अन्दर दिये जाने की व्यवस्था है किन्तु यदि इससे अधिक दूर काम मिलता है तो मजदूरों को 10 प्रतिशत अधिक मजदूरी का भुगतान किया जायेगा।
- कार्य मांगने वाले व्यक्तियों को एक बार में कम से कम 14 दिन का लगातार रोजगार दिया जायेगा, कार्य की उपलब्धता पर यह अधिक दिनों तक भी मिलता रह सकता है।
- मजदूरों की संख्या में कम से कम एक तिहाई महिलाओं को आवश्यक रूप से रोजगार प्रदान करने की व्यवस्था की गई है।
- ग्राम पंचायतों द्वारा संस्तुत किये गये कार्यों को सम्बन्धित क्षेत्र पंचायत द्वारा सुझाव के साथ अनुमोदन के पश्चात सम्बन्धित जिला पंचायत विकास खण्डवार "सेल्फ ऑफ प्रोजेक्ट" के रूप में तैयार कर कार्यों का अनुश्रवण एवं देखभाल सम्बन्धित ग्राम पंचायतों द्वारा किये जाने की व्यवस्था रखी गई है।
- यदि कार्य स्थल पर दुर्घटनावश मृत्यु या अपंगता आ जाती है इसके लिए योजना में 25000 रुपये अनुदान की व्यवस्था की गई है।
- इस योजना के अन्तर्गत मशीनों से कार्य कराये जाने पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया गया है ताकि अधिक से अधिक इच्छुक एवं सक्षम लोगों को रोजगार प्रदान करना सम्भव हो सके।
- कार्यों की गुणवत्ता पर अंकुश रखने हेतु ग्राम पंचायत स्तर पर "सतर्कता एवं निगरानी समिति" की व्यवस्था की गई है जो ग्राम पंचायत स्तर पर कार्यों का अनुश्रवण किया जाना सुनिश्चित करेगी।
- इस योजना में प्रत्येक कार्य स्थल पर एक "साइन बोर्ड" लगाना अनिवार्य किया गया है जिसमें कार्यों का विस्तृत विवरण लिखा हो, इससे कार्यों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी सभी को प्राप्त हो सकती है।

यह योजना 27 राज्यों के 200 पिछड़े जिलों में लागू की गई है। योजना के क्रियान्वयन हेतु वर्ष 2005–06 में 23 अरब 67 करोड़ 57 लाख रुपये जारी किये गये तथा वर्ष 2006–07 के लिए 440157.07 लाख रुपये की धनराशि जारी की गई जिसमें 2 करोड़ 54 लाख 73 हजार 820 "जॉब कार्ड" जारी किये गये जिसमें 89 लाख 43 हजार 703 लोगों ने काम की मांग की और 83 लाख 5930 लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया जा चुका है।

इस योजना में जहां ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है वहीं भविष्य में इनमें आने वाली कमियां भी दिखाई पड़ती है

- सबसे बड़ी समस्या विभिन्न राज्यों में मजदूरी दर का भिन्न–भिन्न होना है। इस योजना में मजदूरी दर 60 रुपये प्रतिदिन रखी गई है जबकि केरल जैसे राज्य में दैनिक मजदूरी 126 रुपये पहले से मिल रही है। वहां इस रोजगार गारंटी अधिनियम के अन्तर्गत कार्य करने वाला व्यक्ति शोषण का शिकार माना जायेगा। इसी प्रकार पूर्व से न्यूनतम मजदूरी आवश्यकता आधारित मानते हुए दैनिक मजदूरी न्यूनतम 2400 कैलोरी, कपड़े आदि श्रमिक की जरूरतों के मुताबिक परिभाषित की गई है किन्तु रोजगार गारंटी अधिनियम इससे भिन्न मजदूरी दर निर्धारित करता है।
- सामाजिक कारणवश एक उच्च जाति का व्यक्ति बेरोजगार होने पर भी अपना नाम पंजीकृत नहीं कराना चाहेगा क्योंकि एक निम्न जाति के व्यक्ति के साथ काम कर पाना सामाजिक संकोचवश मुश्किल होगा।
- राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम में सारा खर्च केन्द्र वहन करेगा। राज्यों को तो केवल लागत का 25 प्रतिशत की व्यवस्था करनी है। इस कारण सम्भव है कि केन्द्र इस बात को देखते हुए कि राज्यों की न्यूनतम मजदूरी की राशि बेकार ही बढ़ रही है, अपना बोझ कम करने के उद्देश्य से मजदूरी की कुल ऊपरी सीमा निर्धारित कर दे।
- इस योजना की कुल लागत मजदूरी से इतनी अधिक जुड़ी है कि केन्द्र कम दर पर मजदूरी तय कर सकता है ताकि यह अपनी राजकोषीय वचनवद्धता (आय–व्यय का समायोजन) न्यूनतम स्तर पर रख सके।

अतः सरकार को यह सुनिश्चित करते हुए कि निर्धारित 60 रुपये दैनिक मजदूरी में वृद्धि करते हुए श्रमिकों को भोजन, कपड़े, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य की सुविधा प्रदान करें और योजना का भ्रष्टाचार मुक्त क्रियान्वयन हो तभी रोजगार गारंटी अधिनियम से सिर्फ प्रत्यक्ष लाभार्थियों को ही लाभ नहीं होगा बल्कि पूरी ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को लाभ मिल सकेगा। व्यापक प्रचार एवं प्रसार द्वारा ही यह योजना शत–प्रतिशत सफल हो सकेगी।

शास्त्रीनगर, गदायां रोड, निकट सरस्वती ज्ञान मन्दिर, अकबरपुर, जनपद–अम्बेडकर नगर, उ.प्र.

भारतीय स्टेट बैंक का क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

मिनाक्षी गणोरकर

बैंक किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी होते हैं। देश की वित्तीय अर्थव्यवस्था में इनका महत्वपूर्ण स्थान होता है। अर्थव्यवस्था का विकास इन्हीं पर निर्भर करता है क्योंकि ये छोटी–छोटी बचतों को प्रोत्साहित करके इन्हें उत्पादन कार्य में लगाते हैं। अर्थव्यवस्था के विकास में सर्वाधिक योगदान भारतीय स्टेट बैंक का रहा है।

भारतीय स्टेट बैंक देश का सबसे बड़ा राष्ट्रीयकृत एवं वाणिज्यिक बैंक है। इसकी स्थापना 1 जुलाई सन् 1955 को इंपीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण करके की गई। इसने अपनी स्थापना से लेकर अब तक विभिन्न क्षेत्रों में विकास के विभिन्न कार्यक्रम चलाये, इन क्षेत्रों में विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र उल्लेखनीय हैं। इसने ग्रामीण क्षेत्र के उत्थान एवं विकास के लिए सराहनीय कार्य किया है। ग्रामीण क्षेत्र में इसकी सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना में सहयोग करना रहा है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना ग्रामीण साख संस्थाओं के परिवार में एक अद्वितीय नवीनतम घटना है। ग्रामीण क्षेत्र के निर्धन परिवारों की साख संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन बैंकों की स्थापना की गई है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एक्ट की प्रस्तावना में स्पष्ट उल्लेख है कि इसकी स्थापना का उद्देश्य कृषि, व्यापार, उद्योग और ग्रामीण क्षेत्र की अन्य उत्पादक क्रियाओं के लिए साख सुविधाएं उपलब्ध कराकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकसित करना है। ये सुविधाएं विशेष रूप से लघु सीमांत किसानों, कृषि श्रमिकों, शिल्पकारों और छोटे उद्यमियों को उपलब्ध कराना है।

प्रस्तुत लेख में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना एवं उपलब्धियों पर विचार करते हुए, भारतीय स्टेट बैंक द्वारा कृषि के उत्थान एवं विकास पर विस्तार से विचार किया गया है।

1 जुलाई 1975 को प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने जो 20 सूत्रीय कार्यक्रम राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत किया उसके अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में आसान शर्तों पर भूमिहीन किसानों एवं श्रमिकों को ऋण देने की व्यवस्था की गयी। इसको क्रियान्वित करने हेतु भारत सरकार ने समूचे देश में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित करने का निर्णय लिया। इन बैंकों की स्थापना करने हेतु 26 दिसंबर 1975 को राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश 'दी रीजनल रूरल बैंक्स आर्डिनेन्स' 1975 जारी किया जिसके अनुसार प्रत्येक ग्रामीण बैंक की पूंजी एक करोड़ रुपये निर्धारित की गयी। इन बैंकों की पूंजी में महत्वपूर्ण योगदान स्टेट बैंक का रहा है। बैंक ने इन बैंकों की पूंजी में 11.4 करोड़ रुपये का अंशदान किया है। 31 मार्च 1998 तक 44 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्टेट बैंक द्वारा प्रायोजित किए गये जिनके 2383 कार्यालय देश के पिछड़े एवं कम बैंकिंग सुविधा वाले 75 जिलों में है।

सरकार के पुनर्गठन कार्यक्रम के अंतर्गत 49 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (जिसमें स्टेट बैंक द्वारा प्रायोजित 44 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में से 8 शामिल हैं) के पुनर्गठन हेतु बैंक ने प्रबंधकीय एवं वित्तीय पुनर्गठन के कई उपाय शुरू किए हैं जिसमें निर्गम पूंजी में वृद्धि एवं कुशल अधिकारियों की क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रमुख के रूप में नियुक्ति करना सम्मिलित है। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक के दिशानिर्देशों के अनुसार बैंक द्वारा प्रायोजित सभी ग्रामीण बैंकों के अनुसार इन बैंकों ने विकास कार्य योजनाएं तैयार की है और मार्च 1999 तक लाभ–अलाभ की स्थिति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनी कार्य प्रणाली में सुधार लाने हेतु समझौता ज्ञापन निष्पादित किया है। बैंक ने 14 राज्यों के अंतर्गत 76 जिलों में 30 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक प्रायोजित किए हैं जिनकी 2,385 शाखाएं हैं। इन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की जमा राशियां व अग्रिम पुनर्गठन कार्यक्रम के अंतर्गत क्रमशः 1,698 करोड़ रुपये और 782 करोड़ रुपये रहे। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के पुनर्गठन के प्रथम चरण में बैंक द्वारा प्रायोजित आठ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को शामिल किया गया है, विकास कार्य योजना और समझौता ज्ञापन के अनुरूप क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के निष्पादन पर निगरानी रखने हेतु बैंक तिमाही अंतरालों पर इसके निष्पादन की समीक्षा करता है जिससे प्रायोजित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक मार्च 1999 तक लाभ–अलाभ की स्थिति को प्राप्त कर सके।

भारतीय स्टेट बैंक ने 16 राज्यों के 102 जिलों में 30 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक प्रायोजित किए हैं। जिनका 2350 शाखाओं का नेटवर्क है। प्रायोजित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की मार्च 2004 के अंत में कुल जमाराशियां 7,813.78 करोड़ रुपये तथा अग्रिम 3401.90 करोड़ रुपये रहे। 31 मार्च 2004 को समाप्त वित्तीय वर्ष के दौरान उससे पूर्व के वर्ष की तरह ही बैंक के 18 क्षेत्रीय

ग्रामीण बैंकों ने लाभ कमाया। वित्तीय पुनर्गठन के लिए बैंक ने मार्च 2004 तक 29 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के पुनः पूंजीकरण हेतु 134.97 करोड़ रुपये का अंशदान किया। एस.बी.आई. लाइफ की समूह योजना के अंतर्गत 1,93,685 ग्राहकों का कुल 1001. 10 करोड़ रुपये का बीमा करवाया गया, जिससे 5.86 करोड़ रुपये का प्रीमियम प्राप्त हुआ। वहीं 31 मार्च 2005 एवं 2006 को प्रायोजित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कुल जमाराशियां क्रमशः 8794.14 करोड़ रुपये तथा 5541.48 करोड़ रुपये रहे। मार्च 2005 को समाप्त वित्तीय वर्ष की अवधि में बैंक के 21 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने पिछले वर्ष से ज्यादा लाभ अर्जित किया। वहीं वर्ष 2006 के दौरान बैंक के प्रायोजित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने 28.84 करोड़ रुपये का लाभ अर्जित किया। वित्तीय पुनः संरचना हेतु चुने गये 29 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के पुनः पूंजीकरण के लिए बैंक ने मार्च 2005 के अंत तक 134.97 करोड़ रुपये का अंशदान किया जो वर्ष 2004 के बराबर ही रहा।

वर्ष 2006 में भी पुनः पूंजीकरण के लिए बैंक वर्ष 2005 के बराबर ही अंशदान किया। वर्ष 2005 में एस.बी.आई. ग्रुप इंश्योरेंस स्कीम के अंतर्गत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के 1,07,864 ग्राहकों का 284.81 करोड़ रुपये का बीमा किया गया। इन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने ग्रुप इंश्योरेंस स्कीम के अलावा वैयक्तिक पॉलिसियों के अंतर्गत भी 25,954 ग्राहकों का बीमा किया। वित्तीय वर्ष (2006) के दौरान भारत सरकार ने उत्तर प्रदेश में भारतीय स्टेट बैंक के क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को समामेलित करके पूर्वांचल ग्रामीण बैंक के रूप में तथा आंध्र प्रदेश में आंध्र प्रदेश विकास ग्रामीण बैंक के रूप में अधिसूचित किया। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल, झारखंड और उड़ीसा राज्यों में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के समामेलन का प्रस्ताव सरकार को आवश्यक कारवाई हेतु प्रेषित किया गया है। इस समामेलन के बाद इन प्रायोजित क्षेत्रीय बैंकों की संख्या घटकर 16 हो जायेगी।

प्रस्तुत तालिका–1 का अवलोकन करने पर यह पता चलता है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने जमाराशियों एवं अग्रिमों में लगातार तीनों वर्षों में वृद्धि की है। जमाराशियों में वृद्धि का प्रतिशत वर्ष 2004–05 एवं 2005–06 में क्रमशः 12.55 प्रतिशत एवं 16.27 प्रतिशत रही, वहीं अग्रिमों में वृद्धि क्रमशः 27.37 प्रतिशत एवं 27. 89 प्रतिशत रही। यह सब भारतीय स्टेट बैंक के सहयोग से संभव हो सका है जिसने सरकार के आदेशानुसार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की उन्नति एवं विकास में रूचि लेकर ग्रामीण जनता को लाभान्वित किया तथा उनमें बचत की आदत को प्रोत्साहित किया। इन बैंकों की स्थापना एवं विकास से गांवों में देशी बैंकर्स साहूकार एवं महाजनों की संख्या में कमी हुई जिनके द्वारा ग्रामीण जनता का शोषण होता था। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने छोटे–छोटे किसानों को प्रोत्साहित कर उनकी बचत को एस.बी.आई. लाइफ की समूह बीमा योजना में विनियोजित किया। यह निवेश वर्ष 2003–04 में सर्वाधिक रहा है वहीं वर्ष 2004–05 में यह कुछ कम रहा। अतः ग्रामीण बैंक ग्रामीण जनता को बीमा योजना में धन निवेश कर उनके भविष्य को सुरक्षित करने का प्रयास कर रहा है एवं बीमा योजना को लाभ प्रदान कर रहा है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के अतिरिक्त भारतीय स्टेट बैंक का सर्वाधिक योगदान कृषि क्षेत्र में रहा है। कृषि क्षेत्र के विकास के लिए इस बैंक द्वारा निरंतर सराहनीय कार्य किये गये। इस क्षेत्र में बैंक द्वारा वर्ष 2006–07 में 6145 करोड़ रुपये के ऋण वितरित किये गये।

तालिका–2 बैंक द्वारा कृषि क्षेत्र में वितरित सहायता राशि को प्रदर्शित करती है। जिससे यह पता चलता है कि वर्ष 2003–04 में कृषि ऋणों का अनुपात 12.79 प्रतिशत तथा वर्ष 2004–05 में यह अनुपात 13.99 प्रतिशत रहा जो गत वर्ष की तुलना में 1.20 प्रतिशत अधिक रहा जबकि वर्ष 2005–06 में कृषि ऋणों का अनुपात 15.64 रहा जो दोनों वर्ष की तुलना में अधिक रहा। इस प्रकार की सहायता से अनेकों किसान लाभान्वित हुए। किसानों के लिए बीज, खाद, संयंत्र, इत्यादि खरीदना सरल हो गया। ये ऋण सस्ती ब्याज दर पर उपलब्ध कराये जाते हैं जिन्हें चुकाने के लिए गरीब किसानों को किसी विशेष परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता एवं ये ऋण सुविधानुसार उपलब्ध भी करा दिये जाते हैं।

तालिका–1 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की जमाराशियों एवं अग्रिमों का अवलोकन

राशि करोड़ रुपये में

वर्ष / मद	2003–04	2004–05	2005–06
जमाराशियां	7,813.78	8,794.14	10,224.88
अग्रिम	3,401.90	4,333.00	5,541.48
निवेश (एस.बी.आई. लाइफ की समूह बीमा योजना)	1,001.10	284.81	–

तालिका–2 कृषि क्षेत्र में ऋण वितरण

राशि करोड़ रुपये में

वर्ष	ऋण–राशि	प्रतिशत
2003–04	6,145	12.79
2004–05	9,814	13.99
2005–06	17,920	15.64

कृषि संबंधित ऋण उपलब्ध कराने के साथ–साथ भारतीय स्टेट बैंक ने किसानों को कुछ विशेष प्रकार की अतिरिक्त सुविधायें भी प्रदान की है जिनमें, किसान क्रेडिट कार्ड, स्वयं सहायता समूह क्रेडिट कार्ड, स्वयं सहायता समूह गोल्ड कार्ड एवं ग्रामीण आवास इत्यादि सुविधाएं प्रमुख हैं।

किसान क्रेडिट कार्ड योजना के अंतर्गत बैंक द्वारा वर्ष 2003–04 में 6.09 लाख क्रेडिट कार्ड जारी किये गये जिनकी कुल ऋण सीमा 1,598 करोड़ रुपये रही, जबकि वर्ष 2004–05 में बैंक द्वारा 9.13 लाख कार्ड जारी करने का लक्ष्य रखा गया था जिसे बैंक ने 10.74 लाख क्रेडिट कार्ड जारी कर पूरा किया गया। जिसके अंतर्गत किसानों ने किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से 3,168 करोड़ रुपये की कुल राशि के फसल ऋण प्राप्त किए, तथा वर्ष 2005–06 में 11.32 लाख कार्ड जारी किए किसकी कुल ऋण सीमा 4,361.39 करोड़ रुपये रही।

स्वयं सहायता समूह क्रेडिट कार्ड योजना के अंतर्गत भारतीय स्टेट बैंक ने किसानों को वर्ष 2003–04 में 614.88 करोड़ रुपये संवितरित किए हैं। वहीं 2004–05 एवं 2005–06 में क्रमशः 696. 58 करोड़ रुपये एवं 951.54 करोड़ रुपये की राशि संवितरित की गई है।

स्वयं सहायता समूह गोल्ड कार्ड योजना के अंतर्गत बैंक द्वारा वर्ष 2003–04 में 29,847 किसान गोल्ड कार्ड जारी किए जिनकी कुल ऋण सीमा 450.50 करोड़ रुपये रही। इसके अतिरिक्त ग्रामीण आवास योजना के अंतर्गत बैंक ने ग्राम निवास एवं सहयोग निवास योजनाएं प्रारंभ की है। वर्ष 2003–04 में 1391 ऋणियों को 14.55 करोड़ रुपये की राशि वितरित की गई। वहीं वर्ष 2004–05 में 4932 ऋणियों को 46.55 करोड़ रुपये की कुल राशि के ऋण दिए गये। इसी प्रकार 2005–06 में 21606 ऋणियों को 121.49 करोड़ रुपये के ऋण दिये गये। भारतीय स्टेट बैंक ने 'सहयोग निवास' योजना के अंतर्गत वर्ष 2004–05 में 4822 ऋणियों को 25.90 करोड़ रुपये का वित्तपोषण किया जबकि विगत वर्ष 2003–04 में 22 किसानों को 1 करोड़ रुपये का वित्तपोषण किया गया था। इस योजना के अंतर्गत किसानों को ऋण देकर उन्हें रहने के लिए मकान एवं जमीन उपलब्ध कराई गई जिससे किसानों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ है।

ग्रामीण आवास एवं सहयोग निवास योजना के अंतर्गत कोष्ठक में ऋणियों की संख्या तालिका–3 द्वारा यह प्रदर्शित होता है कि बैंक द्वारा प्रदत्त विभिन्न सुविधाओं में दी जाने वाली सहायता राशि में तीनों वर्षों में लगातार वृद्धि हुई है, इन

तालिका–3 बैंक द्वारा प्रदत्त सुविधाएं

राशि करोड़ रुपये में

बैंक द्वारा प्रदत्त सुविधायें	वर्ष		
	2003–04	2004–05	2005–06
किसान क्रेडिट कार्ड	1598 (6.09)	3168 (10.74)	4361.39 (11.32)
स्वयं सहायता समूह क्रेडिट कार्ड	614.88	696.58	951.54
स्वयं सहायता समूह गोल्ड कार्ड	450.50 (29847)	–	–
ग्रामीण आवास योजना	14.55 (1391)	46.55 (49.32)	121.49 (21606)
सहयोग निवास योजना	1.00 (22)	25.90 (4822)	

टिप्पणी–छोटे कोष्ठक में कार्डों की संख्या

सुविधाओं से हजारों किसान लाभान्वित हुए हैं तथा ग्रामीण स्थिति में कुछ सुधार हुआ है इससे कृषि की दशा में भी सुधार हुआ है। अब कृषि उन्नत यंत्रों के माध्यम से की जाने लगी है। कार्डों की संख्या में वृद्धि किसानों में इसकी लोकप्रियता को दर्शाती है।

इन सुविधाओं के अतिरिक्त भारतीय स्टेट बैंक द्वारा वर्ष 2004–05 से गन्ना, तंबाकू, मूंगफली, औषधीय पौधों, फलों और सब्जियों, डेरी, कुक्कुट पालन आदि मदों पर ऋण प्रदान किये जाने का प्रयास किया जा रहा है। इन सेवाओं के साथ–साथ बैंक द्वारा लघु एवं मध्यम उद्योगों को भी वित्त प्रदान किया गया है अब तक चावल मिल, अंगूर की खेती, कृषि पंपसेट जैसे 25 समूहों की वित्त सहायता प्रदान की जा चुकी है। बैंक द्वारा किसानों की कृषि उत्पादों से संबंधित अन्य समस्यायें जैसे – ठेके की खेती, कृषि, क्लिनिक, कृषि उत्पादों की बिक्री, महिला सशक्तिकरण, निरक्षरता जैसी सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन इत्यादि समस्याओं को दूर करने के लिए बैंक द्वारा प्रयास किया जा रहा है। वर्ष 2004–05 में वित्त मंत्री द्वारा घोषित राहत उपायों के अंतर्गत बैंक ने 3,47,521 किसानों को 'संकटग्रस्त कृषक योजना' का लाभ प्रदान किया, इस योजना के माध्यम से दी जाने वाली कुल सहायता राशि 820059 करोड़ रुपये देने का प्रावधान किया गया है।

इन सब सुविधाओं और प्रयासों के बावजूद अभी भी कुछ गांव ऐसे हैं जो पिछड़े हैं अर्थात विकास से अछूते हैं अतः आवश्यकता है इन गांवों के विकास की क्योंकि हमारे राष्ट्रीय जनसंख्या आकलन के अनुसार भारत की 70 प्रतिशत से भी अधिक आबादी गांवों में निवास करती है। अतः गांवों एवं कृषकों के विकास पर ही देश का विकास संभव है।

सी.के. 13/38, पशुपतेश्वर चौक, बनारस–221001

बायो डीजल पौधा रतनजोत : वरदान या अभिशाप

अरविन्द सिंह

यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि एक तरफ सरकार पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए हर संभव प्रयास कर रही है। जबकि दूसरी तरफ यही सरकार रतनजोत जैसे विदेशी मूल के घातक पौधे के बृहद् पैमाने पर खेती को बढ़ावा दे रही है जिसमें देश की पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण को अव्यवस्थित करने की पर्याप्त क्षमता है।

पारिस्थितिकी और पर्यावरण की कीमत पर आर्थिक लाभ के लिए विदेशी मूल के पौधे रतनजोत की बृहद पैमाने पर खेती को बढ़ावा भविष्य में देश में गंभीर पारिस्थितिक समस्याएं खड़ी कर सकता है। देश में पहले से ही बहुत से विदेशी मूल के पौधे पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण के लिए खतरा बने हुए हैं ऐसे में रतनजोत की अंधाधुंध खेती भयावह स्थिति पैदा कर सकती है।

वर्तमान में केन्द्र एवं राज्य सरकारें किसानों और गैर सरकारी संगठनों को निजी एवं सरकारी भूमि जिसमें बंजर भूमि भी शामिल

देशी मूल का बहुउपयोगी वृक्ष करंज बन सकता है रतनजोत का विकल्प

है को रतनजोत को बृहद पैमाने पर खेती के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित कर रही है। रेल मंत्रालय द्वारा रेल की पटरियों के किनारे खाली स्थान पर रतनजोत की खेती पहले से ही प्रस्तावित है जिससे प्राप्त डीजल को रेल में ईधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सके। राजस्थान में रतनजोत की व्यावसायिक खेती जारी है। जबकि गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, हरियाणा, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में सरकारी प्रयास के फलस्वरूप इसकी खेती गति पकड़ रही है। वैसे भारत में रतनजोत की छिटपुट खेती उसके औषधीय गुणों के कारण सत्तर के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में दक्षिण भारत के तमिलनाडु एवं केरल राज्य में शुरू हुई थी।

रतनजोत मुख्यतः अपने अखाद्य बीज तेल (40 प्रतिशत) के लिए जाना जाता है। बीज के तेल को परिसंस्करण (माइक्रो–इमल्सिफिकेशन अथवा ट्रान्स–इस्टरीफिकेशन) के पश्चात डीजल के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। अतः पौधे को भविष्य में बायो–डीजल के स्रोत के रूप में देखा जा रहा है। इसलिए रतनजोत को बायो–डीजल पौधा नाम से भी सम्बोधित करते हैं। भारत की तुलना में विकसित पश्चिमी देशों में परिसंस्करण तकनीक ज्यादा उन्नत है। पारम्परिक रूप से रतनजोत अपने औषधीय गुणों के रूप में जाना जाता है। बीज के तेल का उपयोग त्वचा बीमारियों, गठिया तथा लकवा के उपचार में होता है।

रतनजोत पौधे का ताजा दूध (लैटेक्स) रक्त स्राव रोकने में सहायक होता है। दूध का इस्तेमाल आमतौर से रक्तस्रावित घाव के उपचार में होता है। इसके अतिरिक्त दूध का स्थानीय इस्तेमाल बवासीर, दाद, खाज, खुजली आदि बीमारियों के उपचार में भी होता है। पत्तियों का काढ़ा बुखार कम करने में सहायक होता है। भुने बीज का इस्तेमाल जुलाब के रूप में कब्ज आदि बीमारियों के उपचार में सहायक होता है।

रतनजोत की खली का इस्तेमाल प्राकृतिक खाद के अलावा जैव गैस संयंत्र में भी होता है। इसका तेल जलाने के काम के साथ–साथ साबुन एवं मोमबत्ती के निर्माण में भी काम आता है।

रतनजोत का वानस्पतिक नाम जेट्रोपा करकस है जो कि उष्ण कटिबंधीय सदाबहार झाड़ीनुमा पौधा है। यह पुष्पीय पौधों के यूफोरबियेसी परिवार से संबंध रखता है। पौधे की औसत ऊंचाई करीब 3 से 4 मीटर होती है। इसकी पत्तियां हृदयाकार होती हैं। यह पौधा मध्य अमेरिका देश मैक्सिको एवं दक्षिण अमेरिका का मूल निवासी है।

रतनजोत कठोर प्रवृत्ति के कारण किसी भी प्रकार की मिट्टी में सफलतापूर्वक उगने की क्षमता रखता है। इसकी विकास दर बहुत तीव्र होती है। रतनजोत में प्रचुर प्रजनन क्षमता होती है। साथ ही इसके प्रजनन द्वारा भी अपने को विस्तारित करने की क्षमता रखता है। भारत में इसका कोई प्राकृतिक शत्रु नहीं है और शाकभक्षी जानवर भी इस पौधे का तिरस्कार करते हैं। रतनजोत जिस स्थान पर उगता है या उगाया जाता है, वहां अपना एकाधिकार स्थापित कर लेता है जिससे पास–पड़ोस में पौधे की अन्य प्रजातियां पनप नहीं पाती है। उपर्युक्त गुण पौधे को आक्रामकता प्रदान करते हैं जिसके फलस्वरूप भविष्य में यह पौधा देश में खतरनाक खर–पतवार का रूप धारण कर स्थलीय पारिस्थितिकतंत्र को भारी नुकसान पहुंचा सकता है।

देश में जान बूझकर लाये गये या दुर्घटनावश आये बहुत से विदेशी मूल के पौधे पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण के लिए हानिकारक साबित हो रहे हैं। इनमें नीलगिरि (यूकिलिप्टस ग्लोबुलस), काबुली कीकर (प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा), कुर्री (लैन्टाना कैमरा), जलकुम्भी (आईकार्निया क्रैसपीज), गाजर घास (पार्थिनियम हिट्रोफोरस) सूबाबूल (ल्यूसिना ल्यूकोसिफेला), यूपेटोरियम की दो प्रजातियां (यूपेटोरियम एडिनोफोरम एवं यूपेटोरियम राइपेरियम) आदि प्रमुख हैं।

आस्ट्रेलियाई मूल के नीलगिरी को छोड़कर उपर्युक्त सभी पारिस्थितिकी समस्याएं पैदा करने वाले विदेशी मूल के पौधे मध्य अमेरिका एवं दक्षिण अमेरिका के मूल निवासी है जो रतनजोत की भी जन्मस्थली है।

जैव–विविधता की हानि, भूमिगत जल का शोषण, पोषक चक्र की धीमी दर, आवास का विखंड, उपजाऊ भूमि का बेकार भूमि में परिवर्तन आदि कुछ पारिस्थितिकी समस्याएं है जो भारत में विदेशी मूल के इन पौधों द्वारा पैदा की गयी हैं।

नीलगिरी को भूमिगत जल के शोषण और पास–पड़ोस में शाकीय पौधों की अन्य प्रजातियों को पनपने से रोकने के कारण "पारिस्थितिकी आतंकवादी" घोषित कर दिया गया है जबकि काबुली कीकर गुजरात में खर–पतवार का रूप धारण कर जैव–विविधता को क्षति पहुंचा रहा है। कुर्री उत्तराखंड एवं हिमाचल प्रदेश में वन पारिस्थितिकतंत्र के लिए हानिकारक साबित हो रहा है। कुर्री वन में देशीय पौधों की प्रजातियों के पुनर्जनन को प्रभावित करता है। गाजर घास का आतंक देश के मैदानी भागों में दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। इस विदेशी मूल के शाकीय पौधे ने बहुत से स्थानीय पौधों की प्रजातियों को विलुप्ति के कगार पर पहुंचा दिया है। जलकुम्भी बंगाल, बिहार, आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों में जलीय पारिस्थितिकतंत्र के लिए खतरा बनी हुई है। यूपेटोरियम मेघालय में जैव–विविधता के लिए जबरदस्त खतरा बना हुआ है। सूबाबूल अपने उगने वाले आवास में एकाधिकार के चलते देशीय पौधों की प्राजतियों को विस्थापित कर जैव–विविधता को पर्याप्त हानि पहुंचा रहा है।

अतः विदेशी मूल के पौधों के हानिकारक प्रभावों को देखते हुए रतनजोत की अंधाधुंध खेती आत्माघाती कदम है क्योंकि भविष्य में कठोर प्रवृत्ति का यह पौधा मनुष्य के खेती के कैद से मुक्त होकर घातक खर–पतवार का रूप धारण कर सकता है जिसका सम्पूर्ण विनाश एक दुष्कर कार्य होगा। देश में जैव–विविधता की अभूतपूर्व हानि एवं उपजाऊ कृषि भूमि का बेकार भूमि में परिवर्तन (पौधों के अत्यधिक भरमार के कारण) रतनजोत द्वारा भविष्य में पैदा की जाने वाली अनुमानित प्रारम्भिक पारिस्थितिकी समस्याएं पैदा होगी। बंजर भूमि पर रतनजोत की खेती बंजर भूमि को अतिबंजर भूमि (हाइपरवेस्टलैंड) में परिवर्तित कर देगी।

रतनजोत के बायो–डीजल और औषधीय गुण कुछ स्वदेशी मूल के पौधों में विद्यमान है। आज जरूरत इस बात की है कि इस विदेशी मूल के पौधे के पीछे भागने की बजाय हम इस पौधे का विकल्प स्वदेशी मूल के पौधों में खोजें ताकि भविष्य में पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों से बचा जा सके।

स्वदेशी मूल का वृक्ष करंज (पानगैमिया पिन्नाटा), रतनजोत का अच्छा विकल्प साबित हो सकता है। क्योंकि करंज के बीज के तेल रतनजोत के बीज के रासायनिक तेल के गुणों से मेल खाते हैं। करंज का तेल भी पारम्परिक रूप से त्वचा बीमारियों एवं गठिया में इस्तेमाल होता रहा है। तेल में कृमिनाशीय, कीटनाशीय एवं जीवाणुनाशीय गुण पाये जाते हैं। बीज की खली रतनजोत की खली की ही तरह खाद के रूप में इस्तेमाल होती है। करंज को भी रतनजोत की तरह बेकार एवं बंजर भूमि पर आसानी से उगाया जा सकता है। करंज क्षरित भूमि के पुनरूद्धार में सहायक होता है। यह पुष्पीय पौधों के फैबेसी (लेगुमिनेसी) कुल का वृक्ष लवणीय एवं क्षारीय भूमि के पुनरूद्धार में अत्यन्त कारगर साबित होता है। इसकी पत्तियों में लगभग 3 से 4 प्रतिशत तक नाइट्रोजन होता है जिसे हरी खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसकी पत्तियां पालतू पशुओं के लिए हरे चारे के रूप में इस्तेमाल की जाती है। लकड़ी को ईंधन के रूप में भी काम में लाया जाता है।

करंज तीव्र वृद्धि वाला वृक्ष है जो कि चार से पांच वर्ष के भीतर फल देना प्रारम्भ कर देता है और इसमें भी रतनजोत की तरह ही प्रचुर प्रजनन क्षमता होती है।

करंज के अतिरिक्त स्वदेशी मूल का एक और सदाबहार वृक्ष सुरपान (कैलोफिलम इनोफिलम) रतनजोत का विकल्प बनने की क्षमता रखता है। देश में यह वृक्ष आमतौर से दक्षिण भारत एवं अंडमान द्वीप में पाया जाता है। यह वृक्ष पुष्पीय पौधों क्लासियेसी (गुटिफेरी) परिवार से संबंध रखता है। करंज की तरह ही सुरपान और रतनजोत के बीज के तेल के रासायनिक गुणों में समानता होती है। अतः सुरपान का तेल भी परिसंस्करण के पश्चात् बायो–डीजल के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। पारम्परिक रूप से तेल का उपयोग जलाने के साथ–साथ गठिया के उपचार में होता है। इसके अतिरिक्त तेल का इस्तेमाल साबुन बनाने में भी होता है।

निष्कर्ष

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण को दरकिनार कर मात्र आर्थिक लाभ हेतु बिना किसी जांच पड़ताल के विदेशी मूल के पौधे रतनजोत की खेती को बढ़ावा आत्मघाती क्रिया है। पूर्व एवं वर्तमान में विदेशी मूल के पौधों के हानिकारक प्रभावों को देखते हुए यह समय की आवश्यकता है कि हम भारत जैसे विराट जैव–विविधता वाले देश में विदेशी पौधों का विकल्प देशीय पौधों में ही खोजे ताकि विदेशी पौधों के पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावों से बचा जा सकें।

ओल्ड ई/1 एन.सी.सी. मैदान के सामने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों और सीडी **(Font - Kruti Dev 010)** में टाइप की हुई हो और उसके साथ मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। कुरुक्षेत्र में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख संपादक, कुरुक्षेत्र कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग, गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु जन–जागरूकता

गणेश कुमार पाठक व सुनीता चौधरी

भारत में पर्यावरण संरक्षण संबंधी अवधारणा एवं जन–जागरूकता प्राचीन काल से ही रही है। हमारे सभी प्राचीन ग्रन्थों में पर्यावरण जागरूकता की बात भरी पड़ी है। लोक परम्पराओं एवं लोकगीतों में भी पर्यावरण जागरूकता की बातें भरी पड़ी हैं। यदि हम अपनी सामाजिक प्रथाओं एवं रीति–रिवाजों का अवलोकन करें तो पता चलता है कि हमारे देश की महिलाएं भी प्राचीन काल से ही पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक रही हैं। भारतीय संस्कृति में सभी प्राकृतिक तत्वों (पादप, जल स्रोत एवं जीव जन्तु) को कोई न कोई देवता या वाहन से संबंधित कर उनकी पूजा के माध्यम से उनके संरक्षण की बात जन–जन में समाहित की गयी है। आज जो वृक्षों को काटने से बचाने हेतु चिपको आन्दोलन प्रचलित है, वह प्राचीन काल से ही राजस्थान में विश्नोई जाति की महिलाओं द्वारा अपनाया जा चुका है। इस तरह भारत में पर्यावरण संरक्षण संबंधी जागरूकता जन–जन में रचा बसा है और यही कारण है कि वर्तमान समय में भी भारत में पर्यावरण संरक्षण संबंधी जन–जागरूकता काफी सक्रिय है, जिसके लिए अनेक आन्दोलन तक भी चलाए गए हैं एवं चलाए जा रहे हैं।

भारत में पर्यावरण संरक्षण संबंधी जन–जागरूकता का आन्दोलन का वर्णन इस प्रकार से किया जा सकता है।

चिपको आन्दोलन

यह आन्दोलन 1973 में तत्कालीन उत्तर प्रदेश (वर्तमान में उत्तरांचल) सरकार द्वारा जंगलों को काटने का ठेका देने के विरोध में एक गांधीवादी संस्था 'दशौली ग्राम स्वराज मंडल' ने चमोली जिले के गोपेश्वर में रेनी नामक ग्राम में प्रसिद्ध पर्यावरणविद, सुन्दरलाल बहुगुणा के नेतृत्व में प्रारम्भ किया गया, जिसमें इस गांव की महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस आन्दोलन के तहत महिलाएं पेड़ों से चिपक कर पेड़ को काटने से रक्षा करती थी। यह आन्दोलन भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय एवं चर्चित पर्यावरण संबंधी आन्दोलन रहा।

आप्पिको आन्दोलन

यह आन्दोलन चिपको आन्दोलन के तर्ज पर ही कर्नाटक के याण्डुरंग हेगड़े के नेतृत्व में अगस्त, 1993 में प्रारम्भ हुआ। उल्लेखनीय है कि कन्नड़ भाषा में चिपको का अर्थ अप्पिको होता है। इस आन्दोलन में भी पेड़ों से चिपक कर पेड़ को काटने से रक्षा की जाती है। इस आन्दोलन का मूल उद्देश्य वनारोपण, विकास एवं संरक्षण है।

पश्चिमी घाट बचाओ आन्दोलन

पश्चिमी घाट की पर्यावरण समस्या की तरफ लोगों का ध्यान आकृष्ट करने हेतु पर्यावरणविदों, समाजसेवियों एवं लेखकों ने 1988 में पदयात्रा का आयोजन किया। इसमें महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, तमिलनाडु एव केरल के हजारों लोगों ने भाग लिया। 1300 किलोमीटर की पदयात्रा के दौरान सभाएं एवं गोष्ठियों का आयोजन कर इस समस्या पर प्रकाश डाला गया।

कर्नाटक आन्दोलन

कर्नाटक के एक स्वयं सेवी संगठन 'समाज परिवर्तन समुदाय' ने सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर कर कर्नाटक सरकार के उस फैसले का विरोध किया, जिसमें उसने उजाड़ पेड़ जंगल के 80 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में संयुक्त क्षेत्र की कम्पनी से वनीकरण कराना चाह रही है। इस संगठन का कहना है कि जंगलों पर आदिवासियों का अधिकार होना चाहिए। सरकार के निर्णय से उनके जीवन का मौलिक अधिकार प्रभावित होता है।

शान्त घाटी बचाओ आन्दोलन

केरल शास्त्र साहित्य परिषद के नेतृत्व में नवें दशक के प्रारम्भ में यह आन्दोलन चलाया गया, जिसका मूल उद्देश्य भारत का एक मात्र उष्णकटिबंधीय सदाबहार वन क्षेत्र (जो जैविक विविधता का भंडार है) को बचाना था, क्योंकि केरल सरकार द्वारा शान्त घाटी सिंचाई परियोजना प्रारम्भ की जा रही थी। इस आन्दोलन के चलते केरल सरकार को यह परियोजना बन्द करनी पड़ी और इस क्षेत्र की सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय आरक्षित वन क्षेत्र' घोषित करना पड़ा।

कैगा अभियान

कर्नाटक में कैगा नामक स्थान पर बनने वाले नाभकीय ऊर्जा संयंत्र का विरोध 1984 से हो रहा है। यद्यपि सरकार संयंत्र का काम जारी रखे हुए है, किन्तु स्थानीय किसान, मुछुआरे, सुपारी उत्पादक, पत्रकार एवं लेखक लगातार इसका विरोध करते रहे हैं।

जल बचाओ, जीव बचाओ

जल प्रदूषण एवं व्यावसायिक मछलीमार कम्पनियों द्वारा मत्स्य उद्योग के अति दोहन की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए राष्ट्रीय मछुआरों द्वारा पदयात्रा प्रारम्भ की गयी। भारत के

सम्पूर्ण समुद्र तट जो पूर्व में बंगाल से पश्चिम में गुजरात तक एवं दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैला है, तक इस पदयात्रा का आयोजन किया गया, जिसमें बड़ी संख्या में मछुआरे एवं पर्यावरण संरक्षकों ने भाग लिया।

बेड़थी आन्दोलन

कर्नाटक में प्रस्तावित जल विद्युत योजना पर्यावरणविदों के विरोध के कारण बंद कर देनी पड़ी। क्योंकि इस परियोजना के निर्माण से आस–पास का विस्तृत भाग, जिस पर मसालों के बागान थे, डूब जाते। इस परियोजना का विरोध स्थानीय किसानों के अलावा अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने भी किया।

टिहरी बांध विरोधी अभियान

विगत 30 वर्षों से पर्यावरणविद श्री सुन्दर लाल बहुगुणा के नेतृत्व में टिहरी बांध विरोधी संघर्ष समिति इस बांध के निर्माण का विरोध कर रही है। 20 अक्टूबर 1991 को इस क्षेत्र में आए भूकम्प के बाद यह विरोध और तेज हुआ। टिहरी बांध रूस की सहायता से उत्तरांचल के गढ़वाल क्षेत्र में भागीरथी एवं भीलांगना नदी के संगम स्थल से 1.5 किलामीटर नीचे बना है। इसके जलाशय के जल में पुराना टिहरी नगर डूबकर अपना अस्तित्व भी मिटा चुका है।

नर्मदा आन्दोलन

बाबा आम्टे एवं आर्यसमाज सेवियों के नेतृत्व में नर्मदा नदी पर निर्मित हो रहे बांध का इसलिए विरोध किया जा रहा है कि इससे लाखों आदिवासी उजड़ जायेंगे एवं उनके पुनर्वास की व्यवस्था भी नहीं की जा रही है। उल्लेखनीय है कि गुजरात एवं मध्य प्रदेश के नर्मदा नदी पर बांध बनाने का काम चल रहा है। पर्यावरणविदों का कहना है कि इन बांधों का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

दूनघाटी में खनन का विरोध

दूनघाटी एवं मसूरी में चूने की खानों का पर्यावरणविदों ने व्यापक विरोध किया एवं कहा कि इससे पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि हो रही। यही नहीं इस क्षेत्र में चूने के खनन से इस क्षेत्र के जंगल एवं फल देने वाले वृक्ष नष्ट हो रहे हैं, पहाड़ियां नंगी होकर भरभरा रही हैं, एवं जलस्रोत भी प्रदूषित हो रहे हैं। देहरादून की संस्था 'रूरल लिटिगेशन एंड इनटाइटलमेंट सेन्टर' ने सर्वोच्च न्यायालय में सार्वजनिक हित की याचिका दायर की, जिस पर आदेश करते हुए न्यायालय ने खनन पर रोक लगा दी है। पर्यावरण पर प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय सर्वोच्च न्यायालय का यह ऐतिहासिक फैसला कहा जा सकता है।

मिट्टी बचाओ अभियान

मध्य प्रदेश में तवा बांध के कारण अत्यन्त जल–जमाव एवं खारेपन को रोकने तथा किसानों को उसके लिए मुआवजा दिलाने हेतु 1977 में मिट्टी बचाओ आन्दोलन प्रारम्भ किया गया।

यूरिया संयंत्र निर्माण का विरोध

मुम्बई से 25 किलोमीटर दूर थाल वैशढ में विश्व का सबसे बड़ा यूरिया संयंत्र का मुम्बई के पर्यावरणविदों द्वारा, खासतौर से 'मुम्बई पर्यावरण कार्यदल' द्वारा इस आधार पर विरोध किया गया कि इससे मुम्बई के प्रदूषण में और वृद्धि होगी। इस विरोध के चलते संयत्र का निर्माण तो नहीं टला, किन्तु दो वर्ष तक विरोध के चलते निर्माण कार्य रूका रहा।

इन्द्रावती नदी पर बांध का विरोध

महाराष्ट्र में इन्द्रावती नदी पर भोपालपट्टनम् एवं इंचामपतल्ली बांधों का निर्माण कार्य आदिवासियों के आन्दोलन के चलते रोक देना पड़ा। आदिवासियों ने राजनीतिज्ञों एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के संयुक्त संगठन "जंगल बचाओ–मानव बचाओ" आन्दोलन के नेतृत्व में संघर्ष किया।

गंधमर्दन बाक्साईट खनन विरोध

गंधमर्दन जंगलों में बाक्साइट की खुदाई से हो रहे जंगलों का नैसर्गिक–सौन्दर्य नष्ट होता जा रहा था, जिसके विरोध में यहां के आदिवासियों ने प्रबल विरोध किया, फलतः इन जंगलों में बाक्साइट की खुदाई का प्रस्ताव रद्द करना पड़ा।

सेवा मंडल उदयपुर का भूमि सुधार कार्यक्रम

राजस्थान के उदयपुर के निकट ग्रामीण क्षेत्रों में ऊसर एवं रेतीली भूमि को हरा–भरा करने हेतु सेवा मंडल, नामक एक संस्था ने यहां के पिछड़े समुदाय को इतना अधिक प्रेरित किया कि सैकड़ों वर्षों से वीरान पड़ी भूमि अब हरी–भरी हो गयी। उदयपुर के 6 विकास खंडों की लगभग 450 गांवों में जल संरक्षण एवं पेड़–पौधों की सुरक्षा बड़े ही मनोयोग से कर रहे हैं। फलतः पर्यावरण संरक्षण के लिए वर्ष 1991 का के.पी. 'गोयनका पुरस्कार' इस सेवा मंडल संस्था को ही मिला।

इसके अतिरिक्त भी देश के विभिन्न भागों में स्वयं सेवी संस्थाओं एवं सरकारी प्रयास से जन जागरूकता पैदा कर पर्यावरण संरक्षण का कार्य किया जा रहा है।

गणेश कुमार पाठक, रीडर, भूगोल विभाग, ए.एन.एम.पी.जी. कालेज, दुबेछपरा–बलिया, उ.प्र.

ग्रामीण श्रमिकों की दशा और दिशा

इन्दु जैन

यदि प्रश्न किया जाए कि ग्रामीण श्रमिक कौन हैं तो यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिकों के अन्तर्गत सभी स्थायी, मौसमी, अस्थायी या अनियमित कामगार आते हैं जो कृषि या उससे जुड़े किसी अन्य व्यवसाय में मजदूरी पर काम करते हैं। ऐसे श्रमिकों में अधिकतर की रोजी–रोटी अस्थायी मौसमी होती है। इसका मुख्य कारण अज्ञानता और निरक्षरता देखा गया है। इन लोगों के लिए अपने और अपने परिवार के लिए रोटी, कपड़ा और मकान का इंतजाम करने के लिए कठिन परिश्रम की आवश्यकता होती है।

ये श्रमिक जिन लघु या छोटे उद्योगों के साथ काम करते हैं वो जो भी उन्हें संगठित नहीं कर पाए हैं। कारण जो खुद भी संगठित नहीं हैं। इसलिए इन मजदूरों को अब तक संगठित नहीं किया जा सका है। वास्तविकता यह है कि विभिन्न प्रकार के श्रमिकों को मिलाने पर एक विशाल संख्या हो जानी है फिर भी ये लोग कई पीढ़ियों से अज्ञानता और दरिद्रता की स्थिति में हैं। जब तक ये खुद को एक संगठन के नीचे संगठित नहीं करेंगे और अनुशासित नहीं करेंगे तब तक उन्हें उनकी समस्याओं से निजात नहीं मिल पाएगा। ग्रामीण श्रमिकों का संगठन एक ट्रेड यूनियन की तरह का संगठन होता है जो उनके हितों के लिए होता है।

1999–2000 में राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन द्वारा किए गए सर्वेक्षण के मुताबिक देश में संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्र में देश के कुल 39.7 प्रतिशत लोग नियोजित थे। इसमें लगभग 2.8 करोड़ संगठित क्षेत्र के और शेष 36.9 करोड़ असंगठित क्षेत्र के थे।

असंगठित क्षेत्र 36.9 कामगारों में 23.7 करोड़ कामगार कृषि क्षेत्र में नियोजित थे। शेष 1.7 करोड़ विनिर्माण कार्य में, वन उत्पादन गतिविधियों 3.7 करोड़ व्यापार में तथा 3.7 करोड़ परिवहन संचार एवं सेवाओं में नियोजित थे। विभिन्न श्रेणियों में असंगठित क्षेत्र के मजदूरों में कमी आई है। परन्तु उनमें अधिकतर गृह आधारित श्रमिक हैं जो कि बीड़ी बनाने, अगरबत्ती बनाने, पापड़ बनाने, दर्जी, जरी और कशीदाकारी जैसे व्यवसायों में लगे हुए हैं।

असंगठित क्षेत्र के श्रमिक रोजगार के अत्यधिक मौसमी प्रवृत्ति होने से नियोक्ता–कर्मचारी में कोई औपचारिक संबंध नहीं है जिससे वे सामाजिक सुरक्षा की कमी के कारण पीड़ित हैं। बहुत से कानूनों जैसे कामगार प्रतिपूर्ति अधिनियम 1923 न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1994 तथा प्रसूति लाभ अधिनियम 1961, ठेका श्रम (विनियमन) 1970 अधिनियम, भवन तथा अन्य निर्माण श्रमिक (आरईसीएफ) अधिनियम 1996, भवन तथा अन्य निर्माण श्रमिक कल्याण उपकर अधिनियम 1966 आदि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में असंगठित क्षेत्र के कामगारों पर भी लागू है। बावजूद उनकी हालत में कोई सुधार नहीं। उनके परिवार भुखमरी और कुपोषण से ग्रसित हैं। अज्ञानता ने उनके जीवन को अन्धकारमय बना दिया है। बीमारियां और मौत प्रायः गांवों में ही होती है। बीमारियों का प्रकोप लम्बे समय तक चलता है और चला भी गया तो दुबारा अपने पांव पसार लेता है।

देश विकासशील हो रहे हैं परंतु उनका विकास नहीं हो पा रहा है। हरित क्रांति हो चुकी है, परन्तु देश के बहुत से भागों में गरीब किसान इसमें सहभागिता करने लायक नहीं है।

देश ने भले ही अपने शिक्षा के बजट को बढ़ा दिया हो और प्रभावशाली विश्वविद्यालय भी हों लेकिन 30 करोड़ गरीब किसानों के बच्चों के पढ़ने के लिए कोई स्कूल नहीं है। जिन सैकडों–लाखों बच्चों के लिए स्कूल खोले गए हैं तो योग्य अध्यापक नहीं और यदि अध्यापक हैं तो बच्चों की आवश्यकतानुसार पुस्तकें नहीं हैं।

इसी प्रकार से उनका देश संचार–सुविधाओं के मामले में कितना प्रगतिशील हो और अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों पर जेट हवाई जहाजों के आने–जाने की संख्या बढ़ रही हो। परन्तु गरीब किसानों ने शायद ही हवाई जहाजों या कभी भी हवाई अड्डों को देखा हो, उसे इन संचार साधनों के विकास से क्या लाभ। उसे आवश्यकता है एक पक्की सड़क की जिसका उपयोग वह हर मौसम में यातायात के लिए कर सके और अपने अन्य उत्पादन को बाजार में सही समय पर ले जा सकें और उचित मूल्य पा सकें।

श्रम और रोजगार मंत्रालय की रिपोर्ट ने 2005–06 के मुताबिक देश में कृषि श्रमिकों का प्रतिशत सबसे अधिक है। 1999–2000 में राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन द्वारा किए गए सेंपल सर्वे के अनुसार असंगठित क्षेत्र में कार्यबल का 60 प्रतिशत से अधिक श्रमिक कृषि क्षेत्र में लगे हुए हैं।

रिपोर्ट के मुताबिक केरल कृषि कामगार अधिनियम 1974 की पद्धति के आधार पर कृषि श्रमिकों के लिए एक समान केन्द्रीय कानून बनाने के लिए 1975 से कृषि श्रमिकों के लिए विस्तृत कानून बनाने का प्रस्ताव श्रम मंत्रालय के विचाराधीन था। केन्द्रीय विधान पर एक मसौदा 1980 में तैयार किया गया लेकिन राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया। इस मामले पर 18 जनवरी 2000 को राज्य के श्रम मंत्रियों के सम्मेलन में भी विचार–विमर्श किया गया लेकिन विभिन्न मुद्दों पर राज्य सरकार फिर एकमत नहीं हो पाए। राज्य सरकारों के लिए मुख्य संकोच का विषय उन्हें वित्तपोषित करना था। रिपोर्ट में कहा गया है कि राज्य सरकारों

मई 2007

बहुउपयोगी वृक्ष 'शीशम'

मधुज्योत्सना

शीशम सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप के शुष्क मैदानी इलाकों में उगने वाला उपयोगी पर्णपाती वृक्ष है। इसकी लकड़ी मजबूत, टिकाऊ, आकर्षक और रेशेदार होती है। इसका प्रयोग विशेष रूप से फैन्सी और कलात्मक फर्नीचर, मकानों के खिड़की दरवाजों और अलमारियों आदि के निर्माण में होता है।

लकड़ी के अलावा शीशम के वृक्ष की बहुत सारी अन्य उपयोगिताएं भी हैं। एक ओर जहां यह एक श्रेष्ठतम् पर्यावरण मित्र है, वहीं इसके सभी अंगों में ढेर सारी रोग निवारक क्षमताएं भी बसती हैं। इसकी पत्तियां पशुओं के लिए उत्तम चारे के रूप में भी काम आती हैं। विभिन्न उपयोगी गुणों के कारण इसकी लकड़ी कीमती लकड़ियों की श्रेणी में आती है।

भारत के सबसे अधिक क्षेत्र में उगने वाले देशी शीशम की लकड़ी गाढ़े कत्थई रंग की होती है। इसके अलावा कई अन्य प्रजातियां भी यहां पाई जाती हैं। कत्थई शीशम के अलावा काला, पीला, सफेद और विलायती शीशम भी विभिन्न क्षेत्रों में उगता है। भारत में 90 प्रतिशत कत्थई शीशम ही पाया जाता है जो सर्वाधिक उत्तरी भारत के मैदानों में उगता है।

शीशम का अलग–अलग प्रान्तों में नाम और पारिवारिक परिचय

शीशम मूलतः वटादि वर्ग के शिम्बी कुल (पैपेलियोनेसी परिवार) का वृक्ष है। इसका वानस्पतिक नाम 'डल्बर्जिया शिशू' है। इसे संस्कृत में 'शिंशपा अगरु' और 'कृष्णसारा' कहते हैं। हिन्दी में – शीशम, सीसो, शिशु तथा सिसमई, गुजराती में सीसम तानाय, बंग्ला में शीशू, शिशु गाच्छ, तेलगू में–सिस्सू एरैसिस्सू, सिंसुपा, तमिल में – सिसुइटी, गेटटे, कन्नड़ में–शिस्सु, अगरु, बिरडी, बिंडी इरा गुंडी मावू, मलयालम में– इरुविल, उड़िया में –सीसू, सिंसपा, पंजाबी में–ताली, शीशम, शिशई और मराठी में– सिसु कहते हैं। व्यावसायिक क्षेत्रों में इसे सीसू और शीशम के नामों से अधिक जाना जाता है।

जलवायु और भौगोलिक स्थितियां

यह मूलतः सूखारोधी और शुष्क जलवायु का उष्ण कटिबन्धीय वृक्ष है। समुद्र तल से 1500 मीटर की ऊंचाई तक उगने वाला इसका वृक्ष क्षारीय, बर्फीले और जल–जमाव वाले क्षेत्रों को छोड़ कर कंकड़ीली, पथरीली, कठोर भूमि में आसानी से उग जाता है। पाला और लू इसे प्रभावित नहीं कर पाते। यह कम पानी और बाढ़ से प्रभावित नदी के तटवर्ती क्षेत्रों, नालों, नहरों और तालाबों के किनारे की ऊबड़–खाबड़ टीले और भीटे वाली जमीन के अलावा भठ्ठे की खाली पड़ी जमीनों पर भी आसानी से उग जाता है। 18 से 30 मीटर तक की ऊंचाई तक जाने वाले इसके वृक्ष को 3 से 10.5 मीटर के फैलाव और तने का घेरा 2.4 मीटर तक देखा गया है। इसकी आयु 60 वर्ष से भी ऊपर पाई गई है।

शीशम की वानकीय उपयोगिता

वृक्षारोपण और सामाजिक वानिकी एवं वन निर्माण की दृष्टि से शीशम अत्यंत उपयोगी वृक्ष है। इसे आसानी से उगाया जा सकता है। शीशम के वृक्षों को शुरुआती दिनों के बाद बहुत अधिक देख–भाल की जरूरत नहीं पड़ती। इसमें रोग भी प्रायः कम ही लगते हैं।

शीशम का पेड़

सामाजिक वानिकी के लिए शीशम के वृक्ष कई दृष्टियों से अत्यन्त उपयोगी है। एक ओर इनका रोपण आसान होता है, और इनकी देख–रेख में विशेष परेशानी नहीं होती है। इसके साथ ही ये स्थान भी कम घेरते हैं। ज्यादा ऊंचा होने के कारण इनसे प्राप्त होने वाली लकड़ी की मात्रा भी अच्छी होती है। फलों के खाने लायक न होने के कारण फलने पर इसकी रखवाली की जरूरत भी नहीं पड़ती।

गांव में चकरोडों, नहरों और बंजर जमीनों, स्कूलों के परिसरों, तालाबों के किनारे की परती एवं चरागाहों के किनारे की जमीनों और तालाब निर्माण के समय निकाली गई मिट्टी से बने ढूहों (टीलों) पर भी शीशम का वृक्षारोपण सभी दृष्टियों से उपयोगी रहता है। ग्रामीण रेलवे स्टेशनों के आस–पास की खाली पड़ी जमीनों एवं रेलवे लाइनों के किनारे के खाली भूखंडों, स्कूल कालेज की खाली पड़ी खुली जमीनों (ओपेन लैंड) खेल के मैदान के किनारे, गांव के अन्दर एवं गांव के बाहर अन्य सभी तरह की खाली और खुली जमीन पर शीशम के वृक्षों को लगाकर वन वृद्धि की जा सकती है।

शहरों में सरकारी भवनों, स्कूलों, कालेजों की खुली पड़ी खाली जमीनों, पार्कों और सड़कों के किनारे छोटे संकरे भूखंडों और चौड़ी पटरियों और मार्ग विभाजकों के अलावा कालोनियों की सड़कों के किनारे शीशम के वृक्षों को आसानी से उगाया जा सकता है। आज गांव और शहर सभी स्थलों में सुन्दरता के लिए पतले अशोक के वृक्ष लगाने की होड़ मची है। यदि इनकी जगह शीशम के वृक्ष लगाये जायें तो यह उनसे कम सुन्दर नहीं लगेंगे। शीशम की लताओं जैसी डालों पर लटकती छोटी–छोटी बर्फीदार चिन्दीनुमा पत्तियां हवा चलने पर जब झूम कर लहराती हैं तो एक समा सा बंध जाता है। ये सजावटी अशोक के वृक्षों से किसी भी तरह कम सुन्दर नहीं लगती बल्कि 'शो प्लान्ट' अशोक की तुलना में अधिक टिकाऊ, छायादार और पैसा देने वाली होती है।

आज शहरों की बढ़ती आबादी के कारण आवासों के लिए कंकरीट के जंगलों के बीच वृक्षों की बेहद आवश्यकता है, शीशम इसका श्रेष्ठतम विकल्प है। कालोनियों में बने भवनों, राष्ट्रीय राजमार्गों के किनारे चौराहों और मार्ग विभाजकों के बीच कठोर परिस्थितियों और उपेक्षा के बीच खड़े रहने वाले शीशम के वृक्ष लगाकर हम अपनी वानिकीय आवश्यकताओं को पूरा करते हुए वन संवर्द्धन कार्यक्रमों को मूर्त रूप दे सकते हैं। शहरी भवनों के सामने एवं पीछे छोड़े गये बैक और फ्रन्ट शेडों की खुली जमीनों पर शीशम के वृक्ष लगाकर जहां हम गर्मी के दिनों में छाया, शीतलता और स्वच्छ वायु प्राप्त कर सकते हैं वहीं वर्षा काल के अन्तिम समय में छंटाई के माध्यम से पेड़ों की पत्तियों को कम करके जाड़े में खुली धूप और रोशनी का भी पूरा आनन्द ले सकते हैं।

सामाजिक वानिकी के अलावा पारम्परिक वनों के निर्माण में भी शीशम के वृक्षों की अपनी विशेष भूमिका है। शीशम, मूलतः जंगली वृक्ष है, इसे एक बार लगाने के बाद दुबारा लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। ऐसी हालत में पारम्परीक वनों में शीशम के वृक्षों को लकड़ी के लिए काटने के बाद दुबारा लगाने की जरूरत नहीं पड़ती, इसकी जड़ों से पुनः नये वृक्ष खड़े हो जाते हैं जिसके कारण संरक्षित पारम्परिक वनों के लिए भी शीशम का वृक्ष अत्यन्त उपयोगी रहता है।

आज जब सारी दुनिया में वनों के विनाश में जंगल में लगने वाली आग की विशेष भूमिका है, ऐसे में आग लगने के बाद पुनः अंकुरण में सक्षम शीशम का वृक्ष परम्परागत जंगलों के लिए विशेष उपयोगी है।

पर्यावरण संरक्षण में शीशम

शीशम में पायी जाने वाली अनेक विशेषताओं के कारण पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में उसकी उपयोगिता और बढ़ जाती है। राष्ट्रीय राजमार्गों के साथ ही अन्य व्यस्ततम् मार्गों पर शीशम के वृक्षों का लगाया जाना पर्यावरण की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। इन सड़कों पर छोटे बड़े वाहनों के संचालन से उड़ने वाली धूल, वाहनों के इंजन में दहित होने वाले पेट्रोल और डीज़ल से निकलने वाले विभिन्न तरह के विषाक्त और प्रदूषकीय गैसों के शमन में शीशम वृक्ष की अच्छी भूमिका होती है। इसके साथ ही जीवाश्मीय इंधनों के दहन से निकलने वाले कणकीय तत्वों को भी शीशम के वृक्ष की मुलायम लटकने वाली और ऊंची टहनियों पर स्थित छोटी–छोटी हवा से हमेशा हिलने वाली पत्तियां हानि पहुंचाने का बहुत कम मौका देती हैं। इसकी इसी विशेषता के कारण राख उगलने वाले तापीय बिजली घरों के साथ ही अन्य कल–कारखानों एवं औद्योगिक स्थलों में शीशम के वृक्ष काफी उपयोगी रहते हैं। इसके ऊंचे वृक्ष ध्वनि प्रदूषण के नियंत्रण में अत्यंत उपयोगी रहते हैं। अतः शैक्षणिक संस्थानों एवं कार्यालयों के आस–पास शीशम को लगाया जाना ध्वनि प्रदूषण निवारण की दृष्टि से उपयोगी रहता है।

शीशम के वृक्षों की जड़ें जमीन में नीचे तक जाती हैं, जो पानी को ऊपर खींच कर भूगर्भिक जल की गहराई को कम कर देती हैं। नदियों एवं नालों से होने वाले भूमि कटाव से प्रभावित एवं संभावित क्षेत्रों में इसके वृक्षों को लगा कर भूक्षरण को रोक कर मूल्यवान मृदा की रक्षा भी की जा सकती है। शुष्क मरुस्थलीय क्षेत्रों के सीमावर्ती भागों में बबूल के साथ अन्य झाड़ वाली

वनस्पतियों के बीच शीशम और ऊंचे शिरिष के वृक्षों की बाड़ लगाकर मरुस्थलों के विस्तार को रोका जा सकता है। शुष्क मरुस्थलीय क्षेत्र के आस–पास इस प्रकार के वृक्षों को रोप कर जहां मरुस्थलीय वायु क्षेत्र से होने वाली मरुभूमि विस्तार प्रक्रिया पर अंकुश लगता है, वहीं इन क्षेत्रों में व्यापक वृक्षारोपण से भूगर्भिक जल वृद्धि और वर्षा की सम्भावनाओं में भी बढ़ोत्तरी होती है। इसके साथ ही व्यापक वृक्षारोपण से शुष्क क्षेत्रों में जीव जन्तुओं की उपस्थिति भी बढ़ती है, जिससे इन क्षेत्रों में पर्यावरण पक्ष सुदृढ़ होता है।

शुष्क क्षेत्रों में पशु चारे के रूप में

शुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाले पालतू भेड़, बकरी और ऊंट जैसे पशुओं के लिए शीशम की पत्तियां श्रेष्ठतम चारे का काम करती हैं, जिससे शुष्क क्षेत्रों में शीशम की पत्तियों को पशुओं के चारे के रूप में खूब प्रयोग किया जाता है। इसकी पत्तियों में पोषक तत्वों की पर्याप्त उपस्थिति पायी गई है। जो इस क्षेत्र के पशुओं की पोषकीय आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम है।

शीशम की पत्तियों में पाये जाने वाले पोषक तत्वों का विवरण इस प्रकार है:–

प्रोटीन	12.6 प्रतिशत से 24.1 प्रतिशत तक
इथर निष्कर्ष	2.0 प्रतिशत से 4.9 प्रतिशत तक
रेशा	12.5 प्रतिशत से 26.1 प्रतिशत तक
नाइट्रोजन रहित निष्कर्ष	42.1 प्रतिशत से 54.8 प्रतिशत तक
राख	6.6 प्रतिशत से 12 प्रतिशत तक
कैल्शियम	0.89 प्रतिशत से 2.87 प्रतिशत तक
फास्फोरस	0.12 प्रतिशत से 0.42 प्रतिशत तक

उपरोक्त तत्वों की उपस्थिति से स्वतः प्रमाणित होता है कि शीशम की पत्ती शुष्क क्षेत्र के पशुओं के लिए उपयोगी चारा है। अतः इन क्षेत्रों की आर्थिक उन्नति और समृद्धि के लिए पशुपालन जैसे स्थानीय रोजगार साधनों की वृद्धि में शीशम के वृक्षों की उपयोगिता स्वतः प्रमाणित है।

शीशम का आर्थिक पक्ष

अन्य वृक्षों की तुलना में शीशम के वृक्षों का आर्थिक पक्ष स्वतः प्रमाणित है। इसकी महंगी लकड़ी करीब 800 रुपये घनफुट में बिकती है। इसके ऊंचे वृक्षों से कम स्थान में ही अधिक मात्रा में लकड़ी प्राप्त होती है, इसकी लकड़ी सीधी और कम गांठ वाली होती है जिसके कारण इनकी मांग अधिक होती है। इसकी पत्तियों को चारे के रूप में प्रयोग करके भेड़, बकरी और ऊंट पालन कर गांवों में अर्थ एवं रोजगार की अच्छी सम्भावनाएं पैदा की जा सकती हैं। कुल मिला कर शीशम एक उपयोगी अर्थ स्रोत एवं रोजगार का साधन भी है।

औषधि के रूप में

चर्चित आयुर्वेदिक ग्रंथ 'भाव प्रकाश' के अनुसार चिकित्सा कार्य में इस वृक्ष के सभी अंगों का प्रयोग होता है। इसकी पत्ती फली, तेल सभी दवा के प्रयोग में आते हैं। यह चरपरा, कड़वा, कसैला और उष्णविर्य तत्वों वाला वृक्ष है। इसकी लकड़ी धातु परिवर्तक का कार्य करती है।

ग्रामीण क्षेत्रों के बुजुर्ग और जानकार अपने अनुभवों के आधार पर शीशम के जो नुस्खे प्रस्तुत करते हैं उसमें से कुछ इस प्रकार हैं–

- फोड़े–फुंसी, मौसमी खुजली, पुराने घाव आदि में इसकी पत्तियों का रस या मुलायम कोपल वाली पत्तियों की चटनी बना कर रोटी के साथ खाने से लाभ होता है।
- इसके बुरादे का शर्बत रक्त विकार के शमन में उपयोगी है। इसके कुछ दिन प्रयोग से रक्त विकार से मुक्ति मिल जाती है।
- वमन में इसकी पत्तियों और बुरादे का काढ़ा, कोपलों का रस और चटनी लाभकारी होती है।
- स्तनों की सूजन और उसके अन्दर बने रहने वाले दर्द में इसके कोमल पत्तों को गरम करने के बाद सहने लायक हो जाने पर बांधना चाहिए। यदि रोग ज्यादा पुराना हो तो इसकी पत्ती को पानी में उबाल कर उससे स्तनों को सुबह शाम धोना चाहिए। इससे सूजन के साथ ही भीतरी रक्त दोष भी खत्म हो जायेगा।
- इसकी जड़ों को पीस कर इसके तेल में मिलाकर अच्छी तरह उबाल लें। इस उबले तेल को अच्छी तरह छान लें। इसकी मालिश से महिलाओं के गुप्तांगों का संकोचन होकर आन्तरिक विकार दूर हो जाता है।
- कुष्ठ रोगियों को 10 माशा शीशम का बुरादा 150 ग्राम पानी में उबाल कर सुबह नियमित रूप से 40 दिनों तक पिलाना चाहिए।
- गृध्रसी रोग में शीशम की छाल का मोटा चूरा लेकर उसे पानी में अच्छी तरह पकाना चाहिए। पकते–पकते जब यह पानी खूब गाढ़ा हो जाये तो इसकी एक तोले मात्रा को एक चम्मच घी के साथ एक गिलास गर्म दूध में मिलाकर सुबह–शाम एक माह तक सेवन कराना चाहिए।
- सफेद दाग (सोन बहरी) के रोगी को इसकी पत्ती या बुरादे का क्वाथ पिलाना चाहिए।

- धातु दौर्बल में इसके तने के गूदे को महीन पीस कर उसमें एक चम्मच शहद मिलाकर गर्म दूध के साथ सुबह–शाम सेवन करना चाहिए।
- सुजाक के रोगी को इसका काढ़ा और अल्प भोजन देने से लाभ होता है।
- शीशम की मुलायम पत्तियों और कोपलयुक्त नरम शाखाओं को धोने के बाद पीस कर कपड़े से छान कर निकाले गए स्वरस में शुद्ध शहद मिलाकर दुखती आंखों में टपकाने से लाभ होता है।
- मोटापा के रोगी को इसकी कोमल पत्तियों का रस सुबह बासी मुंह लेना चाहिए। उष्ण प्रकृति के व्यक्ति को यह प्रयोग करने से पूर्व चिकित्सक की राय जरूर ले लेनी चाहिए।
- बच्चों के पेट में कृमि होने पर इसकी ताजी पत्तियों का रस शहद मिलाकर चटाने से कृमियों से मुक्ति मिल जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य उदर विकारों में भी इसकी पत्तियों का स्वरस लाभकारी रहता है।
- रक्तार्श, शेगितर भाव, रक्त कास तथा अतिरज निवारण में इसका काढ़ा पिलाना चाहिए।
- पेशाब के रुक–रुक कर दर्द के साथ आने के अलावा गुप्तागों की जलन में इसके रस का सेवन करना चाहिए।
- किसी भी प्रकार के ज्वर में शीशम का सार 2 तोला, 200 ग्राम पानी, 100 ग्राम दूध, 10 पत्ती तुलसी, 10 नग काली मिर्च, 2 इलायची उबालने के बाद छान कर पीने से ज्वर से छुटकारा मिल जाता है।
- जाड़े के मौसम में पैरों में फटने वाली बिवाई में इसके पत्तों की चटनी पीस कर तिल या सरसों या खस के तेल में गरम करके सुहाते–सुहाते भरने से बिवाइयों का दर्द मिट जाता है।

शीशम का वर्तमान संकट

वर्तमान समय में शीशम अपने प्रमुख क्षेत्र उत्तरी भारत में संकट में है। इस क्षेत्र के शीशम के वृक्ष उकठा (फफूंद जनित) रोग से आक्रांत है। इसके लिए कई तरह के फफूंद को कारण बताया जा रहा है, जिसमें फिलैक्टेनिया एवं फ्यूजेरियम सोलेनाई नामक फफूंदों की विशेष भूमिका है। ये फफूंद शीशम के वृक्ष की जड़ों पर हमला बोलते हैं जिससे जड़ से पत्ती तक जल संचरण की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है और जलाभाव में वृक्ष उकठ जाते हैं। इन फफूंदों के चलते इस क्षेत्र में 25 प्रतिशत शीशम के वृक्षों की मृत्यु हो गई है। इस फफूंद (फंगस) के प्रभाव से शीशम के छोटे पेड़ उकठ कर मर जाते हैं। बड़े पेड़ उकठ कर आंशिक रूप से सूख जाते हैं। फफूंद जनित इस रोग के कारण शीशम के वृक्ष असमय काल कवलित होते जा रहे हैं। यदि समय रहते इस रोग के बचाव के ठोस निराकरणीय उपाय नहीं किये गए तो शीशम के वृक्षों की व्यापक बर्बादी हो जायेगी, और लोग इस उपयोगी वृक्ष को लगाने से कतराने लगेंगे।

डी. 53/100, छोटी गैबी लक्सा रोड, वाराणसी–221005, उ.प्र.

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 100 रुपये, दो वर्ष के लिए 180 रुपये, तीन वर्ष के लिए 250 रुपये का (जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक ..... दिनांक ..... संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर *निदेशक, प्रकाशन विभाग* को नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....

पता .....

..... पिन .....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,

नई दिल्ली–110 066

IAS/PCS - 2006-07
Eng./ हिन्दी Medium

समाजशास्त्र का विशेषज्ञ संस्थान

समाज शास्त्र

द्वारा धर्मेन्द्र

समाजशास्त्र की विशेषता-

- ★ छोटा पाठ्यक्रम
- ★ किसी पृष्ठभूमि की आवश्यकता नहीं।
- ★ दिन-प्रतिदिन की घटनाओं से संबंधित, अत: रूचिकर।
- ★ 830-अंकों का योगदान (600-वैकल्पिक विषय, 200-निबंध तथा 30-सा० मुद्दे)
- ★ मात्र तीन महिने में कोर्स पूरा।
- ★ चयनित अध्ययन की अपार संभावनाएँ।

Final Selection IAS/PCS - 2005-06

RANK 235

Aarti S. Parihar
(U P S C)

RANK 1

Ajai Singh
(UTT. P C S)

Kamla Devi Kol
(M.P. PCS)

Vijay S. Dubey
46th B P S C

Manoj Sharma
121st Rank (UPSC)

Love Kumar
311th Rank (UPSC)

Ranjan Prakash
229th Rank (UPSC)

Birendra Kumar
(UTT. PCS)

Rakesh Kumar
UPPCS (C.D.P.O.)

Sangeeta Bhatt
(UTT. PCS)

Vikas Maheswari
(Chattisgarh PCS)

Richa Mishra
(M.P. PCS)

Manish Kr. Singh
(UTT. PCS)

Prakash Chandra
(UTT. PCS)

नि:शुल्क कार्यशाला

गुरूवार 07 जुन.,2007

हिन्दी :- 05.00 P. M.
Eng :- 09.00 A. M.

नामांकन प्रारम्भ

संस्था की रणनीति:

- अध्यापन की शुरूआत मूल अवधारणाओं के साथ-जिससे गैर-समाजशास्त्रिय पृष्ठभूमि के अभ्यर्थी सहजता प्राप्त करें।
- संपूर्ण, संवर्धित तथा अद्यतन पठन सामग्री (पत्राचार हेतु भी उपलब्ध)
- राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रिय अध्ययनों का विश्लेषण।
- ईक्नॉमिक एवं पॉलिटिक्ल वीक्ली, योजना एवं राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सूचनाओं से समृद्ध क्लास नोट्स।
- गहन उत्तर लेखन अभ्यास।
- नवीनतम समाज शास्त्रीय अध्ययन, विवेचना के साथ।

Dharmendra's SOCIOLOGY

302, A-12-13, Top Floor, Ansal Building, Mukherjee Nagar, Delhi-9.
Ph.: 011-65152590, Cell 9868355720

KH-05/07/04

भारत में कृषक श्रमिक : उद्‌भव एवं विकास

दयाशंकर सिंह यादव

कृषक श्रमिक शब्द सुनते ही मानस पटल पर हाथ में हंसिया लिए खेत में काम करते हुए स्त्री या पुरुष का चेहरा उभर आता है और उनके साथ बात करने पर काम न मिलने की परेशानी के साथ जिंदगी के प्रति निराशा दिखती है। भारतीय कृषक श्रमिक चरित्र से परिश्रमी, संतोषी एवं सहनशील होता है। मालिकों द्वारा पीड़ित होने के बाद भी उसके चेहरे पर आत्मसंतोष देखा जा सकता है। समाज में उपेक्षा का जीवन जीते हुए भी यदि उसे प्रेम और दुलार मिल जाता है, उस समय वह खुश हो उठता है।

कृषक श्रमिक एक प्रचलित शब्द है। प्रायः सभी लोग इस नाम से अवगत हैं, परन्तु औद्योगिक श्रमिकों की भांति कृषक श्रमिक की परिभाषा देना बहुत आसान नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि कृषि क्षेत्र से दूसरों के खेतों पर मजदूरी के बदले नियमित रूप से काम करने वालों का स्पष्ट वर्ग उस समय तक पैदा नहीं होता जब तक कि कृषि में पूंजीवादी संबंधों का पूरी तरह विकास नहीं होता। भारत में कृषि में पूंजीवादी संबंधों के अभाव की वजह से ही यह समस्या है। भारतीय कृषि व्यवस्था का इतिहास यह स्पष्ट करता है कि कृषि के कार्यों में संलग्न जनसंख्या का एक बड़ा भाग भूमिहीन है। इस प्रकार के भूमिहीन तथाकथित कृषकों के पास न तो स्वयं की भूमि है और न ही उनकी इतनी सामर्थ्य है कि बड़े किसानों, जमींदारों से भूमि लेकर उसे जोत सकें। इस सबका मुख्य कारण इनकी आर्थिक विपन्नता है। परिणामस्वरूप ये व्यक्ति कृषि कार्यों में आवश्यकतानुसार सहायता देते हैं और उसके बदले उन्हें पारिश्रमिक प्राप्त होता है, इन कृषक श्रमिकों में से कुछ लोगों को दूसरों के खेतों पर जीविका के लिए कभी–कभी काम करना पड़ता है। इन परिवारों के लोगों को किसान माना जाए या कृषक श्रमिक, यह तय करने के लिए कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। लेकिन इस कठिनाई के बावजूद इस वास्तविकता से इंकार नहीं किया जा सकता कि भारत में बड़ी संख्या में लोग पूरी तरह या आंशिक रूप से मजदूरी के बदले में दूसरों के खेतों में काम करते हैं। यही कारण है कि भारत में अनेक विशेषज्ञों ने कृषक श्रमिकों के कार्य दिवसों और उनके पास भूमि की सीमा को लेकर समय–समय पर उन्हें परिभाषित करने का प्रयास किया है।

कृषक श्रमिकों से हमारा तात्पर्य उन ग्रामीण श्रमिकों से है जो कृषि कार्य में मजदूरी पर लगे हुए होते हैं। कृषि अर्थशास्त्र के अनुसार "कृषक श्रमिक वह समूह है जो अपना श्रम कृषि कार्यों में लगाकर उसके बदले नकद या वस्तु के रूप में मजदूरी प्राप्त कर अपने श्रम का विक्रय करता है।

भारत में 19वीं शताब्दी में कृषक श्रमिकों का कोई स्पष्ट और अलग वर्ग विद्यमान नहीं था। परम्परागत ग्रामीण समाज खेती एवं दस्तकारी की समन्वित एकता पर आधारित था। कैम्पबेल जोर्ज के अनुसार भारत में आमतौर पर खेती को किराये के मजदूरों द्वारा नहीं करवाया जाता था। दत्त आर. पालमे के अनुसार 142 में तत्कालीन जनगणना आयुक्त, सर टामस मुनरों ने यह अनुमान लगाया था कि भारत में भूमिहीन श्रमिक नहीं थे। परन्तु धीरे–धीरे जनसंख्या में वृद्धि के कारण भूमि पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव, किसानों की ऋणग्रस्तता एवं भूमि हस्तान्तरण की सरलता और ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के नष्ट हो जाने के कारण 20वीं शताब्दी में बड़े पैमाने पर एक भूमिहीन श्रमिक वर्ग का उद्‌भव हुआ। अतः ग्रामीण जनसंख्या का अधिकांश भाग भूमिहीन वर्ग कहा जाने लगा। आगे चलकर इस वर्ग को कृषक श्रमिक या खेतीहर मजदूर के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा।

भारतीय समाज में कृषक श्रमिक वर्ग की उत्पत्ति और विकास के संबंध में अब तक कई अध्ययन किये गये हैं। लेकिन इन अध्ययनों के निष्कर्ष अत्यधिक भिन्नता लिये हुए हैं। कुछ अध्ययन कृषक श्रमिकों का उद्‌भव ब्रिटिश शासन व्यवस्था के अन्तर्गत देखते हैं, जबकि कुछ इसे भारतीय समाज में जातीय व्यवस्था के प्रारम्भ से संबद्ध करते हैं। उनका मानना है कि प्राचीन काल से ही जाति व्यवस्था के साथ–साथ कृषक श्रमिकों का एक अलग वर्ग अस्तित्व में आया है। ब्रिटिश शासन व्यवस्था में शासन की उत्पत्ति के रूप में कृषक श्रमिकों के उद्‌भव को प्रतिस्थापित करने वाले अध्ययन मूलतः एस.जे पटेल, एच.डी. मालवीय, के.के. घोष हैं जिनका मानना है कि कृषक श्रमिक वर्ग की उत्पत्ति के लिए ब्रिटिश शासन व्यवस्था की नीतियां उत्तरदायी हैं। जबकि जाति व्यवस्था से कृषक श्रमिकों का उद्‌भव खोजने वाले अध्ययन आर.के मुखर्जी, वी.आर. जोशी, डी. कुमार और आन्द्रेबेत्तेई द्वारा किया गया है।

भारत की सामाजिक व्यवस्था में जातिगत श्रेणियों का विशेष प्रभाव है। जाति का संबंध जन्म से होता है। जातिगत नियमों का उल्लंघन हिन्दू संस्कारों के अनुसार अपवित्र कर्म है तथा भावी जीवन के लिए अकल्याणकारी माना जाता है। जातींय संस्थाएं भारतीय परम्परा के अनुसार जाति विशेष के सदस्यों के कार्यों का निर्धारण करती हैं।

एम. चौधरी के अनुसार गैर मार्क्सवादी शोधकर्त्ताओं की दृष्टि में भारत में वर्गों के निर्धारण हेतु जाति जनजाति परिस्थितियां महत्वपूर्ण कारक है। इन शोधकर्त्ताओं के अनुसार भारतीय ग्रामीण समाज में वर्गीकरण का आधार (1) श्रमशक्ति का क्रय–विक्रय,

(2) उत्पादन का क्रय–विक्रय और (3) जाति/जनजाति परिस्थितियां हैं। जातिगत पेशे में बदलाव आने पर भी कृषक श्रमिकों के विषय में यह प्रमाणित हुआ है कि निम्न और पिछड़ी जातियों की बहुसंख्या ही आज भी कृषक श्रमिक हैं।

आर.के. मुखर्जी ने ग्रामीण समाज की जीवन शैली में हो रहे परिवर्तनों का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया है कि भारत में जाति व्यवस्था के अन्तर्गत ही कृषक श्रमिकों का उद्‌भव देखा जा सकता है। आंशिक रूप से प्राचीन स्रोतों तथा आंशिक रूप से ग्रामीण अध्ययनों के प्रमाण पर आधारित उन्होंने प्राचीन एवं मध्य भारत में जाति एवं रोजगार के बीच ठीक उसी तरह से निकट संबंध पाया है जैसा कि आज है। इस तरह भूमि के मालिक उच्च जाति के लोग, मध्यवर्ती जाति के किसान तथा निम्न जाति के भूमिहीन मजदूर हुआ करते थे। कृषक श्रमिकों के विकास अध्ययनों में वी. आर. जोशी का कथन है कि अधिकांश कृषक श्रमिक निम्न या अछूत जाति के हुआ करते हैं जैसे –नोनिया, पासी, जाटव। आंद्रेबेतेई ने भी उपर्युक्त निष्कर्षों का समर्थन किया है। उनका कहना है कि तन्जौर जिले में अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि सामान्यतः ब्राह्मण जमींदार थे जबकि कृषक श्रमिकों का अधिकांश भाग हरिजनों का था।

भारतीय कृषि संरचना के ऐतिहासिक विकास के अंतर्गत विभिन्न काल खंड़ों में कृषक श्रमिकों की संख्या में वृद्धि का यदि प्रमुख कारण खोजा जाय तो ग्रामीण निर्धनता एवं निम्न सामाजिक परिस्थिति प्रकट होता है। अनेक कारणों जैसे– निम्न आय, भू राजस्व, ऋणग्रस्तता, बेदखली, प्राकृतिक आपदायें कुटीर उद्योगों और दस्तकारियों का पतन वे प्रबल सामाजिक–आर्थिक कारण हैं जिससे ग्रामीण मजदूरों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है। औपनिवेशक काल में किसान और ग्रामीण शिल्पकार साधनहीन होकर कृषक श्रमिक बनते गये। इस प्रक्रिया को निः किसानी करण (डि–पी जेण्टाइजेशन) कहा जाता है।

भारत में प्राचीन काल से वर्तमान तक कृषक श्रमिकों की संख्या में लगातार वृद्धि दृष्टिगोचर होती है। जनांकिकीय कारकों को समाविष्ट करने के उपरान्त भी इनकी समानुपातिक वृद्धि सदा बनी रही है। प्रमुखतः ग्रामीण दरिद्रकरण तथा गैर किसानीकरण की प्रक्रियाओं ने इसमें योगदान दिया है। औपनिवेशिक काल में कृषि मजदूरों में अभूतपूर्व वृद्धिमानता दृष्टिगोचर होती है। स्वतंत्रता के बाद अभी कुछ पिछले वर्षों में नयी प्रौद्योगिकी के कारण कृषि श्रम की मांग कम हुई है।

जनसंख्या में वृद्धि

भारत में 1921 के बाद जनसंख्या में बहुत तेजी के साथ वृद्धि हुई है लेकिन अर्थव्यवस्था में इतनी अधिक तेजी के साथ विकास नहीं हुआ कि बढ़ी हुई जनसंख्या को बड़ी संख्या में खेती के बाहर दूसरे क्षेत्रों में रोजगार दिया जाता। विनिर्माण उद्योगों, परिवहन आदि में इस तरह की टेक्नालाजी होती है कि पूंजी–श्रम अनुपात लगभग स्थिर होता है जिससे बढ़ती हुई श्रम शक्ति को इन क्षेत्रों में आसानी से खपाया नहीं जा सकता। खेती में ऐसी बात नहीं है। इससे पूंजी–श्रम अनुपात ही नहीं, भूमि–श्रम अनुपात भी परिवर्तित होता है। इसलिए जब जनसंख्या बढ़ती है तो लोग दूसरे क्षेत्र में रोजगार न मिलने पर खेती में काम करने लगते हैं। भारत में कृषक श्रमिकों की संख्या में वृद्धि का यह महत्वपूर्ण कारण है।

भोगेन्द्र झा, के अनुसार ग्रामीण लोग अशिक्षित व परम्परावादी होते हैं। जनसंख्या कम करने में उनका विश्वास नहीं होता है। इसका परिणाम यह हुआ कि गांवों में जनसंख्या बढ़ती गयी और बढ़ी हुई जनसंख्या के उदरपोषण हेतु वैकल्पिक रोजगार के साधनों की व्यवस्था नहीं हो सकी। इसका परिणाम यह हुआ कि बाध्य होकर लोग उदरपोषण हेतु कृषि पर आश्रित हो गये और कृषि क्षेत्र में जनसंख्या के बढ़ने से खेतों का विभाजन व विखंडन हुआ। अलाभकर जोते बढ़ीं। मझोले किसान अधिक गरीब हो गये तथा गरीब, भूमिहीन तथा कृषक श्रमिक बन गये।

कुटीर उद्योगों और दस्तकारियों का पतन

जनसंख्या वृद्धि के अतिरिक्त, ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों और दस्तकारियों का पतन हुआ है। पहले इस देश में कुटीर उद्योग–धन्धे विकसित थे। गांवों में जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग इन धन्धों पर आश्रित था। सन् 1938 में राष्ट्रीय नियोजन समिति ने सुझाव दिया था कि देश में ग्रामीण लोगों के रोजगार के संदर्भ मे कुटीर एवं लघु उद्योगों की भूमिका होती है। बहुत से लोगों के जीवनयापन के ये आधार होते हैं। अंग्रेजी शासनकाल में कुटीर उद्योगों और दस्तकारियों का पतन हुआ, लेकिन उनकी जगह आधुनिक उद्योगों की स्थापना नहीं हुई। भारत में परम्परागत उद्योगों को नष्ट करने के लिए अंग्रेज शासकों ने विभिन्न उपाय किये थे, अतः औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत इतने ज्यादा आधुनिक उद्योगों की स्थापना संभव ही नहीं थी कि उन सभी कारीगरों को रोजगार मिल जाता, जो कुटीर उद्योग में लगे हुए हैं। अंग्रेजी शासन काल में ढाका तथा मुर्शिदाबाद जैसे बड़े औद्योगिक नगरों के ही कारीगर नहीं, छोटे कस्बों के कारीगर भी बर्बाद होकर कृषि में कृषक श्रमिक की हैसियत से कार्य के लिए गांवों में पहुंच गये।

छोटे किसानों और काश्तकारों का भूमि से वंचित होना

अन्य देशों की तरह भारत में भी बहुत सारे छोटे किसान भूमि से वंचित होते रहे। दक्षिण भारत में जहां रैयतवाड़ी प्रणाली थी, शुरू में अधिकांश भूमि किसानों के पास थी। लेकिन जब वहां पर भी मध्यस्थों का विकास हुआ तो धीरे–धीरे कृषि छोटे किसानों के हाथ से निकलती गई और वे या तो काश्तकार हो गये या उनकी हैसियत कृषक श्रमिक की रह गयी। स्वतंत्रता मिलने पर जब सरकार ने भूमि सुधार कार्यक्रम प्रारम्भ किया तो जमींदारों ने

काश्तकारों को 'खुदकाश्त' की आड़ में भूमि से बेदखल कर दिया। इनमें से अधिकांश लोग खेतों में मजदूरी करने लगे।

अनार्थिक जोतें

उत्तराधिकार संबंधी कानून का कृषि पर जोतों के उपविभाजन और उपखंडन के रूप में बुरा असर पड़ा है। इस प्रक्रिया से देश में अधिकांश जोतें अनार्थिक हो गई और प्रायः छोटे किसानों के लिए निजी खेती से जीविकोपार्जन संभव नहीं रहा। ये छोटे किसान अक्सर जमींदारों और बड़े किसानों के खेतों पर मजदूरी करते हैं। कई राज्यों में बहुत छोटे किसान लगान पर अपनी जमीन बड़े किसानों को दे देते हैं और स्वयं कृषक श्रमिक की हैसियत से जीविकोपार्जन करते हैं।

ऋणग्रस्तता में वृद्धि

भारतीय कृषक गरीब है। उसे अपने विभिन्न कार्यों के सम्पादन हेतु धन की आवश्यकता पड़ती है। उस आवश्यक धन का प्रबंध वह अपने पास से नहीं कर सकता है। ऋण की आवश्यकता होती है। ऋण हेतु वह गांव के महाजन व बड़े किसान के पास जाता है। भूमिपति ऋण तो देता है किंतु ब्याज की दर इतनी अधिक होती है कि किसान ऋण का भुगतान समय से नहीं कर पाता है और फिर ये किसान परिवार ऋण से मुक्ति पाने के लिए आय बढ़ाने की कोशिश करता है। इस दिशा में प्रयास करते हुए वे दूसरों के खेतों पर मजदूरी करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। प्रायः देखा गया है कि छोटे किसान महाजन से भूमि छुड़ा नहीं पाते और अंततः उनकी हैसियत कृषक श्रमिक की रह जाती है।

शोषणकारी प्रवृत्ति

ग्रामीण समाज में श्रमिकों की आर्थिक स्थिति के साथ–साथ सामाजिक स्थिति भी निम्न पायी जाती है। सामन्तवादी प्रवृति आज भी गांवों में प्रचलित हैं। कुछ बड़े–बड़े लोग बलपूर्वक छोटे व निम्न जाति के लोगों से काम लेते हैं। इनकार करने पर इन दबे हुए लोगों को मारा–पीटा जाता है। कृषक श्रमिकों में अनुसूचित ज़ाति एवं अनुसूचित जनजातियों की संख्या लगभग (49.1प्रतिशत) आधी है। इन लोगों की सामाजिक स्थिति अति दयनीय होती है और ये लोग काम करने हेतु बाध्य होते हैं।

कभी–कभी तो ऐसा भी देखा गया है कि यदि गांव से कोई व्यक्ति बाहर काम करने की इच्छा रखता है तो उसके मार्ग में विभिन्न प्रकार से व्यवधान खड़े कर दिये जाते हैं। यदि वह संयोग से बाहर चला भी गया तो गांव में उसकी संपत्ति को, उसके परिवार वालों को हानि पहुंचायी जाती है, जिससे कि बाध्य होकर वह गांव की ओर लौट आता है। कभी–कभी उसे झूठे मुकदमें में फंसा दिया जाता है। फलस्वरूप तंग आकर वह सीधा–साधा ग्रामीण, कृषक श्रमिक बनने के लिए बाध्य हो जाता है।

सुरक्षा की भावना

आज भी भारतीय ग्रामीण समाज परम्परावादी है। लोग घर पर ही रहना चाहते हैं। परिवार के सभी सदस्य एक साथ रहने में अधिक सुरक्षा की अनुभूति करते हैं। ऐसी स्थिति में गांव में ही रहकर कृषक श्रमिक संख्या में वृद्धि करते हैं। धनी व बड़े लोग अपने काम में लग जाते हैं, परन्तु गांव का निर्बल ग्रामीण बाध्य होकर कृषि क्षेत्र में मजदूरी करता है। मुद्रा और विनिमय प्रणाली का विस्तार कृषि क्षेत्र में बीसवीं शताब्दी में मुद्रा का उपयोग बढ़ा है और अधिकाधिक उत्पादन बाजार को ध्यान में रखकर किया जाने लगा। मुद्रा में मजदूरी के प्रचलन के कारण श्रमिक का झुकाव कृषि की ओर बढ़ा है। अब बड़ा किसान बाजार व्यवस्था का पूरा फायदा उठाना चाहता है और इसके लिए वह जरूरी समझता है कि मजदूर को मुद्रा में मजदूरी देकर भूमि से अलग रखें।

पूंजीवादी कृषि

पिछले 50 वर्षों में अनेक कारणों से देश में पूंजीवादी कृषि को प्रोत्साहन मिला है। मध्यस्थों के उन्मूलन, कृषि में तकनीकी विकास, सस्ती सहकारी साख, विपणन सुविधाओं के विस्तार और सरकार की कृषि मूल्य नीति से देश में पूंज़ीवादी कृषि के लिए अनुकूल स्थितियां पैदा हुई हैं और खासकर पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पूंजीवादी खेती का काफी विकास भी हुआ है। यहां के पूंजीवादी ढंग से खेती करने वाले किसान–उद्यमी काफी दूर के इलाकों से मजदूरों को आकर्षित करने लगे हैं। आगे आने वाले वर्षों में इस बात की सम्भावना है कि अन्य क्षेत्रों में पूंजीवादी कृषि के विकास से बहुत सारे काश्तकार भूमि से वंचित हो जाएं और उनकी हैसियत कृषक श्रमिकों की रह जाए।

शिक्षा का निम्न स्तर

कृषक श्रमिकों की जनसंख्या वृद्धि में निम्न शिक्षा स्तर का भी महत्वपूर्ण स्थान रहता है। ग्रामीण समाज में शिक्षा का प्रायः अभाव पाया जाता है। अच्छी एवं तकनीकी शिक्षा के अभाव में उन्हें अन्य नौकरी नहीं मिल पाती है। वर्तमान भौतिकवादी युग में गांव का सामान्य पढ़ा लिखा व्यक्ति भी नौकरी नहीं पाता है। बाध्य होकर कृषक श्रमिक के रूप में कार्य करता है।

रोजगार ढांचे में बदलाव

देश के रोजगार ढांचे में पिछले पांच दशकों में कई बदलाव आये हैं सन् 1961 तथा 2000 के बीच कुल कार्यशील जनसंख्या में कृषकों का हिस्सा 53.0 प्रतिशत से घटकर 32.0 प्रतिशत हो गया, परंतु कृषक श्रमकों का हिस्सा 17.0 से बढ़कर 27.0 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार इस अवधि में कुल कार्यशील व्यक्तियों में कृषि आधारित कार्यशील व्यक्तियों का हिस्सा 70.0 प्रतिशत से घटकर 59.0 प्रतिशत रह गया है।

प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बिघूना (औरैया) उ.प्र.

विकलांगों का सहारा: रेशम उद्योग

सत्यभान सारस्वत

भारत जैसे विशाल देश में बढ़ती जनसंख्या के कारण अनेक समस्याओं का उद्‌गम हो रहा है जिसमें कुपोषण और प्रदूषित वातावरण एवं विषम वातानुकूल प्रवृत्तियों के कारण, विकलांगों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। आज देश में जनसंख्या के लगभग आठ प्रतिशत लोग विकलांग है। विकलांगों की इतनी बड़ी संख्या के कारण सरकार, समाज एवं स्वयंसेवी संस्थाओं के सामने उनके रोजगार की विकट समस्या है। विकलांगों में, शारीरिक विकलांगता, हाथ–पैर की अपूर्णता, अंधापन, बहरापन एवं मूक और मानसिक विषमताएं होती हैं।

रेशम उद्योग एक ऐसा कृषि आधारित कुटीर उद्योग है जिससे हमारे देश में लगभग साठ लाख लोग परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से जुड़े हैं। इनमें वृक्षारोपण, रेशमकीट पालन एवं धागाकरण (वस्त्र निर्माता) हैं। जिनमें सबसे सक्रिय एवं जटिल कार्य रेशम कीट पालन है किन्तु यह कार्य उतना ही कम भौतिक श्रम चाहता है। रेशम कीट पालन में स्वस्थ पुरुषों से अधिक, गृहणियां, बच्चे–बूढ़े सभी लोगों को रोजगार का साधन उपलब्ध है।

विकलांगों के लिए रेशम कीट पालन एक पूर्णकालीन व अर्धकालीन (क्षेत्रानुसार) रोजगार हो सकता है। विशेषकर जो विकलांग लगड़े हैं, बहरे हैं, गूंगें हैं, एक हाथ से विहीन हैं वे आसानी से कम भौतिक श्रम के साथ रेशम कीट पालन कर सकते हैं।

प्रशिक्षण की आवश्यकता– रेशम उद्योग के उपर्युक्त तीन अवयवों–वृक्षारोपण (पौधाकरण), रेशम कीटपालन एवं धागाकरण में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। विशेषकर रेशम कीटपालन एवं धागाकरण के लिए जिसमें तकनीकी जानकारी की आवश्यकता है। रेशम कीटपालन में, रेशम बीज उत्पादन भी अपने आप में पूर्णकालीन व्यवसाय है जिसमें विकलांगों को प्रशिक्षण देकर रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है। किन्तु रेशम कीटपालन इन सब में सरल है, एवं कुटीर उद्योग के रूप में विकलांगों के लिए सरलतम हो सकता है। प्रशिक्षण के लिए सबसे सरलतम उपाय "देखो, सीखो एवं करो" हो सकता है अर्थात जहां पहले से कुछ किसान रेशम कीटपालन कर रहे हों वहां पर उन्हें पहले से रेशम कीटपालन देखने का अवसर मिले फिर सहभागिता में धीरे–धीरे कार्य करने का अवसर मिले। यदि नियमित रूप से रेशम कीटपालन में प्रशिक्षण देना है तो इसके लिए पूरे भारतवर्ष के विभिन्न रेशम उत्पादक राज्यों में केन्द्रीय रेशम बोर्ड की संस्थाएं कार्यरत हैं वहां प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

विकलांग लोग रेशम कीटपालन के लिए निकटतम उपलब्ध शहतूत बागान से शहतूत की पत्ती तोड़कर भरते हैं फिर उनको रेशम कीट की अवस्थानुसार काटकर कीड़ों को ट्रे में खाने को डाल सकते हैं और कीड़ों की सफाई कर सकते हैं। साथ ही कीटपालन गृह की देख–रेख कर सकते हैं।

'रेशम कीटपालन' किसानों के घर में प्रदर्शन करते वैज्ञानिक अधिकारी

तालिका–1 विकलांगों द्वारा रेशम कीटपालन एवं रेशम उद्योग में कार्य एवं शुद्ध लाभ

(1/2 एकड़ भूमि में)

कार्य सम्पादन	आय/लाभ	शुद्ध लाभ
शहतूत की पत्ती तोड़ना और कीड़ों को खिलाना	12000 रुपये प्रति आधा एकड़	9000 रुपये
रेशमी धागाकरण	10–15 कि.ग्रा. प्रतिमाह 1000–1500 रुपये	8000–12000 रुपये

'रेशम कीटपालन' में प्रशिक्षण देते हुए अधिकारी (ग्रामीण महिला–पुरुष ध्यान से सुनते हुए)

इस क्षेत्र में उत्तराचंल के देहरादून जनपद के एक गांव बालूवाला (विकास क्षेत्र विकासनगर) में एक किसान जोकि गूंगा हैं श्री धर्मपाल अपने परिवारजनों अर्थात भतीजे रामपाल के साथ विगत दो–तीन दशक से रेशम कीटपालन का कार्य करने से परिवार की आर्थिक स्थिति बेहतर हो रही है। व्यक्तिगत रूप से उनकी कार्यप्रणाली को देखा जा सकता है कि वह स्वयं अपने घर के सामने से शहतूत–बागान से हरी कोमल सरस शहतूत की पत्ती तोड़कर लाते हैं। फिर कीड़ों की अवस्था अनुसार स्वयं अपने भौतिक परिश्रम से घर में चल रहे कीट पालन में शहतूत की पत्तियां कीड़ों को खिलाते हैं। धर्मपाल की इतनी पारखी नजर है की वह स्वयं स्वस्थ और बीमार कीड़ों को पहचान सकते हैं– पके हुए कीड़ों को रेशम बनाने के लिए बांस की चन्द्रिका अथवा सूखे आम, यूकेलिप्टस की पत्ती पर डालकर रेशम कोसा (कोकून) बनाने के लिए डाल सकते हैं।

सामान्यतः एक किलोग्राम रेशम के कोसा (कोकून) बनाने के लिए बीस किलो शहतूत की पत्ती की आवश्यकता होती है और वर्ष में एक हैक्टेयर से चालीस–पचास टन, शहतूत की पत्ती का उत्पादन हो सकता है जिनसे पांच–छः फसल लेकर एक–दो लाख रुपयों की साल में आय हो सकती है। रेशम उत्पादन राज्य कर्नाटक व उससे कई जनपदों, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु में सम्भव है, जहां पर पूरे वर्ष रेशम कीटपालन का कार्य होता है। इन राज्यों में रेशम पालन के लिए वर्ष भर अनुकूल वातावरण स्थान विशेष पर उपलब्ध रहता है।

विकलांगों को विशेष सहायता– केन्द्र सरकार और राज्य सरकार विकलांगों को स्वावलम्बी बनाने के लिए अनेकों योजनाओं को कार्यान्वित कर रहे हैं जिसमें कुछ योजनाएं एवं आर्थिक सहायता देने वाली संस्थाओं की जानकारी इस प्रकार है:

देश के प्रत्येक राज्य में उसके जनपद में जिला ग्रामीण विकास संस्था (डी.आर.डी.ए.) कार्यरत है जिसका दायित्व ग्रामीण क्षेत्र के पूर्ण विकास का है। इस संस्था के माध्यम से कई सरकारी/अर्ध सरकारी संस्था ग्रामीणों को आर्थिक सहायता देती है। जिनमें सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों, सहकारी बैंक, नाबार्ड एवं कपार्ट के साथ गैर–सरकारी संस्थाएं भी शामिल हैं।

वर्ष 1990 से नाबार्ड को रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के आदेश से रेशम उद्योग व रेशम कीटपालन के लिए विशेष सहायता देने के लिए कहा गया है। सभी ग्रामीणों विशेषकर विकलांगों के लिए भारत सरकार के कपड़ा मंत्रालय ने 'उत्प्रेरक विकास योजना' प्रारम्भ की है, जिसमें विकलांगों को रेशम कीटपालन कक्ष बनाने के लिए तथा रेशम कीटपालन हेतु यंत्र खरीदने के लिए आर्थिक सहायता दी जाती है। इस योजना में सरकार 50 प्रतिशत धन खर्च का स्वयं वहन करती है। ऐसी परियोजना का सीधा लाभ विकलांग व्यक्तियों को विशेष रूप से दिया जाता है।

रेशम कीटपालन से लाभ– शारीरिक रूप से विकलांग जिनमें गूंगे, बहरे, एवं एक पैर से लगड़े लोग (स्त्री–पुरुष) रेशम कीटपालन अपने घर में कर सकते हैं। यदि एक आधा एकड़ भूमि में शहतूत के बागान (4X2) के अन्तराल पर

तालिका–2 रेशम कीटपालन से आर्थिक लाभ (100 बड़े शहतूत के पेड़)

1/2 एकड़ में

फसल का समय	रेशम कीटाणुओं की मात्रा	आशातीत उत्पादन रेशम कोसा (1 कि.ग्रा.)	सम्पूर्ण आय (रुपयों में)	शुद्ध लाभ (रुपयों में)
बसंत फसल (मार्च)	150	60	7500.00	5000.00
गर्मी की फसल (अप्रैल)	75	30	3000.00	2500.00
वर्षापरान्त (सितम्बर)	125	50	6000.00	4500.00
	300	140	16500.00	12000.00

श्री धर्मपाल (गूंगा, बहरा) विकलांग अपने रेशम कीटपालन कक्ष में (बालूवाला, देहरादून, उत्तराखंड)

लगाया जाये तो साल में तीन रेशम कीटपालन की फसल के साथ–साथ अन्य फसल भी की जा सकती है। सरकारी सुविधाएं जो समाज कल्याण विभाग राज्य सरकार की ओर से मिलती है उनमें विकलांगों को वरीयता के आधार पर रेशम कीटपालन की सभी सुविधाएं निशुल्क अथवा आधी कीमत पर दी जाती है। कुछ राज्यों में सामाजिक वन प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत पंचायती भूमि अथवा सड़क/नहर के किनारे शहतूत के पेड़ लगाएं जाते हैं जिनका उपयोग भूमिहीन किसान रेशमकीट पालन के लिए करते हैं।

वैज्ञानिक आंकड़ों के आधार पर ये अनुमान लगाया जाता है कि सौ पेड़ों से शहतूत का पत्ता आधा एकड़ भूमि में सघन वृक्षारोपण के बराबर मिलता है। कुछ राज्यों में शहतूत के पेड़ों को वन विभाग के द्वारा सघन पौधारोपण प्रक्रिया में लगाया जाता है जिनसे मिले पत्तों का उपयोग रेशम कीटपालन में करते हैं। उत्तराखंड एवं हिमाचल प्रदेश जैसे पहाड़ी राज्यों में, रेशम कीटपालन को प्रोत्साहन देने के लिए राज्य सरकार ने पहाड़ी एवं घाटी दोनों ही जगह खाली जमीन में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम में, शहतूत के पेड़ लगाएं हैं। वहां से निशुल्क शहतूत के पौधे उपलब्ध कराये जाते हैं, इनमें विकलांगों को विशेष प्रोत्साहन दिया जाता है।

रेशम धागाकरण में स्वरोजगार– विकलांग लोग विशेषकर गूंगें, बहरे, लगड़े, अपने घर में कोसा उबालकर स्वयं धागा निकालने वाली मशीन से धागा निकालने का कार्य कर सकते हैं। धागा निकालने का कार्य गैर–रेशम कीटपालन समय में करके अतिरिक्त आय का साधन हो सकता है। उत्तराखंड के पहाड़ी गांवों में विशेषकर चमोली व रूद्रप्रयाग जनपद में विकलांग लोग तकली से रेशम व कोया (तसर) का धागा निकालकर स्वयं रोजगार पा रहे हैं।

ऐसे विकलांग लोगों को सरकार द्वारा निशुल्क अथवा कम से कम मूल्य पर धागा निकालने की मशीन उपलब्ध कराई जाती है। इसकी अधिक जानकारी राज्य सरकार, रेशम निदेशालय और समाज कल्याण विभाग से पाई जा सकती है।

संयुक्त निदेशक (वैज्ञानिक–डी. अ.प्र.) केन्द्रीय रेशम बोर्ड, भारत सरकार
71, कश्मीरी कॉलोनी, माजरा, देहरादून

सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के तहत पंजाब को केन्द्रीय सहायता: ग्रामीण विकास मंत्रालय ने सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के कार्यान्वयन के लिए मौजूदा वित्तीय वर्ष (2006–07) के दौरान पंजाब के मनसा जिला ग्रामीण विकास एजेंसी को केन्द्रीय सहायता की दूसरी किस्त के रूप में 1.29 करोड़ रुपये मंजूर किए हैं। केन्द्र और राज्य योजना खर्च को क्रमशः 75 तथा 25 के अनुमात में वहन किया जाता है।

केन्द्र द्वारा प्रायोजित सम्पूर्ण योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों को अतिरिक्त दिहाड़ी रोजगार उपलब्ध काराया जाता है। इस योजना के तहत टिकाऊ सामुदायिक सम्पत्तियां, सामाजिक–आर्थिक बुनियादी ढांचे के निर्माण के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा का भी प्रावधान किया गया है। स्कीम के तहत राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों को हर वर्ष अनाज उपलब्ध कराया जाता है। ग्रामीण विकास मंत्रालय भारतीय खाद्य निगम को सीधे अनाज की कीमत अदा करता है।

ग्रेट निकोबार द्वीप की विलुप्त होती शोम्पेन जनजाति

रमेश चन्द्र तिवारी

भारत वर्ष की संस्कृति और सभ्यता अपने आप में अनूठी है। इसका प्रमुख कारण यहां के निवासियों की विभिन्न सांस्कृतिक अस्मिता है। यह अपने आप में जहां अक्षुण्ण है, वहीं इनकी एकात्मकता भारतीय सभ्यता की परिचायक है। यही कारण है कि भारत को अनेकता में एकता वाला देश कहा जाता है। भारत में कुल 28 राज्य और 7 संघशासित प्रदेश हैं। इन्हीं 7 संघ शासित प्रदेशों में एक है– 'अंडमान और निकोबार द्वीप समूह। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में मुख्यतः निग्रीटो और मंगोलॉयड प्रजाति की अनुसूचित जनजातियां निवास करती हैं जो निम्न हैं–

निग्रीटो प्रजाति की जनजातियां	मंगोलायड प्रजाति की जनजातियां
ओंगी	निकोबारी जनजाति
जारवा	शोम्पेन जनजाति
सेन्टीनली	
ग्रेट अंडमानी	

उपरोक्त अनुसूचित जनजातियों में निकोबारी जनजाति को छोड़कर शेष को आदिम जनजाति की श्रेणी में रखा है। अण्डमान तथा निकोबार द्वीप पुंज का सबसे दूरस्थ द्वीप ग्रेट निकोबार, भारत की मुख्य भूमि से 1800 किलोमीटर दूर बंगाल की खाड़ी के अंडमान सागर में स्थित है। अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह के अन्य द्वीपों की तरह ग्रेट निकोबार द्वीप भी समुद्र में डूबे हुए पर्वत के शिखर व जलमग्न पर्वत श्रृंखला के हिस्से हैं। यह पर्वत श्रृंखला म्यांमार की यराकान–योमा पर्वत श्रृंखला से जुड़ी है।

ग्रेट निकोबार द्वीप में पूरे भारत का अन्तिम सिरा स्थित है। इस सिरे को इन्दिरा प्वाइंट नाम दिया गया है। ग्रेट निकोबार द्वीप के सघन जंगल व नदियों के भीतरी तटीय भागों में निवास करने वाली एकमात्र आदिम जनजाति को शोम्पेन कहते हैं। यह जनजाति आज भी सभ्यता से दूर आदिम युग में अपना जीवन गुजार रही है। सभ्यता की दृष्टि से यह जनजाति विकास नहीं कर पाई है। यद्यपि हाल के कुछ वर्षों में इनमें सभ्यता के सीमित संपर्क के फलस्वरूप कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

शोम्पेन जनजाति एक घुमन्तू व अर्धस्थायी आदिम जनजाति है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवश्यकता एवं परिस्थिति के अनुसार स्थान परिवर्तन कर विचरण करती रहती है। 'शोम्पेन' नाम का अर्थ होता है– वे जो जंगल में रहते हैं। शोम्पेन जनजाति स्वयं को शोम्पेन नाम से नहीं जानती है। तटीय क्षेत्रों के भीतरी भागों में रहने वाले शोम्पेन अपने को 'माओ' और सघन जंगल में रहने वाले शोम्पेन अपने को 'तायो' के नाम से जानते हैं। एक शोम्पेन समूह दूसरे शोम्पेन समूह को 'बवेया' कह कर बुलाते हैं। तटीय क्षेत्रों में निवास करने वाले अनुसूचित जनजाति ग्रेट निकोबारी के साथ शोम्पेन जनजाति का व्यवहार मित्रवत है। शोम्पेन जनजाति के लोग स्वभाव से शांत, गंभीर और शर्मीले होते हैं।

उत्पत्ति

शोम्पेन जनजाति की उत्पत्ति के संबंध में विद्वान एकमत नहीं हैं। इस विषय पर शोध कार्य चल रहे हैं।

शारीरिक बनावट

शोम्पेन जनजाति की त्वचा का रंग हल्के भूरे से लेकर पीले भूरे रंग का होता है। इनकी लड़कियों और औरतों का रंग पीलापन लिए होता है। बाल सीधे व नाक चौड़ी से चपटी, मुंह बड़ा व चौड़े आकार का, कद मध्यम और होठ उठे हुए होते हैं। इनका रक्त समूह 'ओ' है।

रहन–सहन

शोम्पेन जनजाति प्रायः जंगली जड़ी बूटियों द्वारा अपना इलाज करते हैं। इनके द्वारा बोली जाने वाली अपनी भाषा जिसकी कोई लिपि नहीं हैं उसे शोम्पेनी कहा जाता है। शोम्पेन द्वारा अपने परिवार के रहने के लिए बनायी जाने वाली झोंपड़ियों को फ्लैंक्स हट कहते हैं। ये जमीन से ऊपर लगभग 4 फुट से 11 फुट लकड़ी की बल्लियों की सहायता से प्लेटफार्म पर बनाया जाता है। परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाने पर उस स्थान को छोड़कर अपने निश्चित क्षेत्र के भीतर ही दूसरे स्थान पर रहने के लिए चले जाते हैं। इनकी झोंपड़ियों का आकार मधुमक्खी के छत्ते के समान होता है। अपने भोजन पकाने के बर्तन शोम्पेन पेड़ के छाल से बनाते हैं। इसके अतिरिक्त ये एक विशेष विधि द्वारा दो लकड़ी को रगड़ कर आग उत्पन्न करते हैं। पेड़ के छाल से अपने पहनने वाले वस्त्र लंगोटी को बनाते हैं। जिसे लबोऊ कहा जाता है।

शोम्पेन जनजाति प्रत्यक्ष रूप से जंगल व उसके उत्पाद पर निर्भर है। ये अपनी आजीविका हेतु मछली पकड़ने, शिकार करने व वन्य उपज संग्रहण का कार्य करते हैं।

निवास स्थान

वर्तमान में ग्रेट निकोबार द्वीप के सघन जंगल व नदी के भीतरी तटीय भागों में निवास करते हैं। शोम्पेन बस्तियां प्रायः छोटे–छोटे समूह में बिखरी हुई होती हैं। घुमन्तू व अर्धस्थाई निवास प्रवृत्ति के कारण इनकी बस्तियों व सदस्यों की संख्या बदलती रहती है। शोम्पेन जनजाति आज भी ग्रेट निकोबार द्वीप के सघन जंगल के दुर्गम व निर्जन स्थानों पर खाद्य संग्राहक व शिकारी आदिम जनजाति के रूप में जीवन गुजार रही हैं। यही कारण है कि इन्हें– 'हंटर गैदर्स' भी कहा जाता है। ये अपना एक अलग अस्तित्व बनाये हुए हैं।

वर्तमान में शोम्पेन जनजाति कठोर परिश्रम के बावजूद जीविका उपार्जन में असमर्थ व संक्रमण के दौर से गुजर रही हैं। ये सभ्य समाज के साथ अपना समायोजन नहीं बना पा रही हैं। यही कारण है कि यह आज कई तरह की समस्याओं व रोगों से ग्रस्त है जिसके कारण इनकी जनसंख्या निरंतर घट रही है।

शोम्पेन जनजाति की जनसंख्या

जनगणना वर्ष	पुरुष	महिला	कुल जनसंख्या
1901	196	152	348
1911	190	185	375
1921	190	186	376
1931	100	103	203
1941	86	88	171
1951	78	79	157
1961	69	71	140
1971	59	65	124
1981	50	46	96
1991	145	141	286
2001	255	143	398

स्रोतः एस.ए. अवराधी–मास्टर प्लॉन–जनजाति कल्याण विभाग, अण्डमान एवं निकोबार प्रशासन, पोर्ट ब्लेयर, 2006।

चूकिं आधुनिक सभ्य समाज से इनका समायोजन न हो पाने के कारण स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं से ये वंचित रह जाते हैं और कभी–कभी काफी संख्या में मलेरिया, डायरिया आदि रोगों से इनकी मृत्यु हो जाती है। यद्यपि विगत दो दशकों से इनकी जनसंख्या में वृद्धि हो रही है परंतु वृद्धि की रफ्तार धीमी है। ग्रेट निकोबार में शोम्पेन जनजाति के कुल लगभग 10 समूह हैं जिनकी मार्च 2006 तक जनसंख्या घटकर 250 के लगभग हो गई है।

विभिन्न स्थानों पर बसने वाले समूहों की जनसंख्या

निवास स्थान	पुरुष	महिला	कुल संख्या
गलथिया नदी का तटीय भाग	04	04	08
चिंगन बस्ती (7कि.मी.)	05	06	11
इम्पो–ची	11	06	17
डगमर नदी का तटीय भाग	17	10	27
एलेक्जेण्डर नदी का तटीय भाग	23	16	39
37 कि.मी. शोम्पेन बस्ती	29	18	47
28 कि.मी. शोम्पेन बस्ती	20	10	30
24 कि.मी. शोम्पेन बस्ती	23	13	36
लाफूलबे	14	09	23
ट्रिकेटबे	09	03	12
योग	**155**	**95**	**250**

शोम्पेन पुरुषों (155) की अपेक्षा स्त्रियों (95) का प्रतिशत कम है। शोम्पेन सदस्यों में अपने सगे भाई–बहन, माता पिता से विवाह नहीं किया जाता है। प्रत्येक शोम्पेन समूह का एक मुखिया होता है। यह समूह का सबसे जिम्मेदार, बुद्धिमान व समझदार व्यक्ति होता है। इस जनजाति का कोई धर्म नहीं होता है। ये प्राकृतिक चंद्रमा में अपना विश्वास रखते हैं। विशेष अवसर पर खुश होने पर ये गीत गुनगुनाते व समूह नृत्य करते हैं। ये समूह में अपनी बस्ती से बाहर जाते हैं और समूह में बैठकर ही भोजन करते हैं। ये अपने शिकार के लिए स्वयं वल्लभ बनाते हैं और समुद्र तथा नदी नालों में आवागमन के लिए नाव (होडी) बनाते हैं। इसमें हल्की लकड़ी का आउट रिंगर लगा होता है। ये अपनी पारंपरिक चिकित्सा में विश्वास करते हैं और पेड़ों एवं जड़ी बूटियों द्वारा अपनी चिकित्सा करते हैं। इस जनजाति की पारिवारिक स्थिति संतोषप्रद है। घर का कार्य मुख्यतया स्त्रियां करती हैं और पुरुष शिकार, मछली मारना, वन्य उपज संग्रहण और अन्य कार्य करते हैं।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। अब बाह्य जगत से कुछ संपर्क के कारण इनमें थोड़ा परिवर्तन दिखाई देने लगा है। इनमें खान–पान में, वेशभूषा में, पारंपरिक चिकित्सा, प्रयोग में लाये जाने वाले बर्तनों आदि में परिवर्तन प्रमुख हैं। शोम्पेन जनजाति में कई समस्याएं पाई जाती हैं परंतु उनमें प्रमुख समस्याएं–आवागमन, अस्वस्थता, कुपोषण, एकीकरण, शिक्षा सुविधाओं का अभाव, खाद्य पदार्थों की कमी आदि हैं। इनमें शिक्षा के प्रति रूचि बेहद कम है। शोम्पेन जनजाति के विकास हेतु नियुक्त अधिकारी एवं कर्मचारियों के सहयोग से वर्तमान में चार सदस्य शिक्षा के ज्ञान से लाभान्वित हो रहे हैं। शोम्पेन जनजाति को संतुलित खाद्य पदार्थ देने के उद्देश्य से अंडमान आदिम जनजाति विकास समिति द्वारा मुफ्त चावल, दाल, नमक और दियासलाई दिया जाता है। उन्हें रुपये पैसे के विनिमय व्यवस्था की भी जानकारी दी जा रही है ताकि वे प्रशासन के ऊपर निर्भर न रहे।

शोम्पेन शारीरिक रूप से गंदे होते हैं, विशेषकर औरतें। केवड़ी इनके भोजन का मुख्य स्रोत है। इसके अतिरिक्त नारियल, केला और कंद–मूल, फल भी ये अधिक खाते हैं। मंगोलायड वर्ग के शोम्पेन डरपोक व शर्मीले होते हैं। ये शहद निकालने की कला में काफी निपुण हैं। इनकी बस्तियां गंदी, बदबूदार होती हैं। इनमें चर्म रोग अधिक पाया जाता है। इनकी मुख्य समस्या कुपोषण है।

इनमें प्रेम विवाह अधिक होता है। दूसरे नंबर पर गोद लेकर किया जाने वाला विवाह आता है। इस जनजाति में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है इसका प्रमुख कारण बहुपत्नी विवाह है। अधिकांश पुरुष एवं स्त्रियों की शादियां 10–15 वर्ष की आयु में हो जाती है। इनमें बाल विवाह का प्रचलन पाया जाता है। इसे गोद लेकर विवाह कहा जाता है। इनमें विधवा अथवा विधुर को विवाह करने की स्वतंत्रता है। ये अब शोम्पेनी भाषा के साथ–साथ थोड़ी बहुत हिन्दी बोलते और समझते हैं। सभी सदस्यों का जीवन स्तर गरीबी रेखा के नीचे है। इनकी संख्या में हो रही कमी के कई कारण है जिसमें मृत्यु दर, बाल मृत्यु दर व प्रजनन के दौरान मृत्यु की अधिकता, संक्रामक एवं त्वचा संबंधी रोगों की अधिकता, चिकित्सा सुविधाओं का इन दुर्गम स्थानों में अभाव, आदि प्रमुख हैं। अधिकांश शोम्पेनों को रुपये एवं पैसों के लेन–देन की कोई जानकारी नहीं है। इस जनजाति को विलुप्त होने से बचाने के लिए निम्नलिखित सुझाव अत्यन्त आवश्यक हैं–

- शोम्पेन जनजाति की सभ्यता के विकास के लिए द्वीप समूह के प्रशासन द्वारा कई क्षेत्रों में प्रयास किये जाने चाहिए।
- शोम्पेन जनजाति के सदस्यों में चर्मरोग, सर्दी, खांसी, क्षयरोग, बुखार, पेट में कीड़े, मलेरिया आदि बीमारियां पायी जाती हैं। अतः उनको इन बीमारियों से बचाने के लिए उनकी बस्तियों में सचल चिकित्सालय की सुविधाएं पहुंचाना, उनके स्वास्थ्य की नियमित जांच करना एवं उपचार हेतु नई खोज की आवश्यकता है ताकि सभी को चिकित्सा सुविधा का लाभ मिल सके।
- उनकी बस्तियों के आस–पास के जंगल एवं तटीय क्षेत्रों में केवड़ी, नारियल, सुपारी, फलदार वृक्षों जैसे आम, अमरूद, केला सब्जियों के पौधों की बागवानी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- शोम्पेन के विकास के लिए इनके क्षेत्रों में गैर आदिवासी लोगों के प्रवेश को रोका जाना चाहिए जिससे उन्हें जंगलों से प्राप्त होने वाली वस्तुओं से वंचित न होना पड़े। इनके कल्याण हेतु किये जा रहे प्रयास तब तक सफल नहीं हो पायेंगे जब तक बाहरी व्यक्तियों द्वारा किये जा रहे इनके शोषण को नहीं रोका जायेगा।
- शोम्पेन जनजाति के सदस्यों को व्यक्तिगत स्वच्छता व साफ–सफाई संबंधी अच्छी व स्वस्थ आदतों को डलवाने हेतु इन क्षेत्रों में नियुक्त अधिकारियों व कर्मचारियों के सहयोग से प्रयास किया जाना चाहिए।
- शोम्पेनी भाषा के विकास हेतु शोध होना चाहिए ताकि आदिम जनजाति विकास समिति के सदस्यों को शोम्पेनी सीखने में मदद मिले और शोम्पेन के साथ संप्रेक्षण में व उनकी बात समझने और अपनी बात उन्हें समझाने में इनको कठिनाइयों का सामना ना करना पड़े।
- शोम्पेन जनजाति द्वारा प्रयोग की जा रही जड़ी–बूटियों के संबंध में और उपयोग के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए।
- शोम्पेन जनजाति की वंश वृद्धि और वंश की स्वायत्ता की रक्षा के लिए यह भी आवश्यक है कि इनमें गैर जनजातियों व दूसरी अन्य जनजातियों का मिश्रण न हो अन्यथा शोम्पेन जनजाति अपनी वास्तविक पहचान और अस्तित्व खो देगी।
- शोम्पेन बस्तियों में प्राथमिक विद्यालय की सुविधा उपलब्ध कराने हेतु प्रशासन को प्रयास करना चाहिए, जिसमें इन्हें अनौपचारिक व व्यावहारिक शिक्षा दी जा सके, ताकि इनका संतुलित विकास हो सके।

रीडर, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत आंध्र प्रदेश को केन्द्रीय सहायताः ग्रामीण विकास मंत्रालय ने प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत आंध्र प्रदेश के लिए आंध्र प्रदेश ग्रामीण सड़क विकास प्राधिकरण (आरआरआरडीए) जो कि एक स्वायतशासी संस्था है, को वर्ष 2006–07 के लिए 70.47 करोड़ रुपये की राशि दूसरी किस्त के फेज–4 के लिए जारी की है। यह अनुदान योजना खर्च के लिए दिया गया है और इसका इस्तेमाल प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के दिशानिर्देशों में समय–समय पर निर्धारित शर्तों तथा अनुपूरक निर्देशों के अनुसार किया जाएगा।

प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना का उद्देश्य देश की 500 और उससे अधिक आबादी वाली (पहाड़ी क्षेत्रों में (पूर्वोत्तर राज्यों सहित) 250 और उससे अधिक आबादी वाली) 1.72 लाख आवासीय बस्तियों को हर मौसम के अनुकूल सड़कों से जोड़ना है। प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना के तहत बनने वाली सड़कें उच्च स्तरीय तकनीकी द्वारा निर्मित होती हैं और इनकी अगले 5 वर्षों तक देखरेख की व्यवस्था भी की जाती है। केन्द्र पोषित योजना के रूप में इन सड़कों का निर्माण खर्च पूरी तरह से भारत सरकार द्वारा वहन किया जाता है, राज्य सरकारें केवल इनकी देखरेख का खर्च वहन करती हैं।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाएं

निर्मल कुमार आनंद

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को आरक्षण देने की प्रक्रिया का प्रावधान यद्यपि 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से किया गया और इसका उद्देश्य आधारभूत स्तरों पर यानी ग्रामीण विकास में महिलाओं को सहायक बनाने की प्रवृत्ति रही है। जिसके पीछे भारत में अतीत की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है। प्रारंभ में विशेषकर वैदिक युग में महिलाओं को सामाजिक स्तर पर सम्मान और अधिकार दोनों प्राप्त था। भारतीय संस्कृति की यह मौलिक धारणा रही है। –'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते तत्र देवता रमन्ते'। लेकिन मध्यकालीन युग में जिसे महिला अधिकार की दृष्टि से अंधकार युग भी कहा जाता है उसमें महिलाओं को अधिकार और सम्मान विहीन कर दिया गया। उसे घर की चहारदीवारी में न केवल बंद कर दिया गया बल्कि मानवीय अधिकारों के अतिरिक्त समस्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। यह प्रक्रिया स्वतंत्र भारत के प्रारंभिक चरणों तक चलती रही। वस्तुतः पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं को आज भी कोई विशेष अधिकार नहीं है। स्वतंत्रता के पश्चात भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व राजनीतिक और प्रशासनिक संदर्भों में नगण्य है, जबकि वैश्वीकरण की दौड़ में महिलाओं को समान सहभागिता प्रत्येक स्तरों पर देने की आवश्यकता है।

सभी व्यवस्थाओं का मूल आधार राजनीतिक व्यवस्था होती है। अर्थात राजनीतिक व्यवस्था के माध्यम से ही अन्य व्यवस्थाओं को नियमित नियंत्रित और संचालित किया जाता है। इसलिए सर्वप्रथम राजनीतिक स्तरों पर ही नियंत्रण की प्रवृत्ति विकसित हुई है। समस्त वैश्विक प्रतिमानों में यह देखा जा सकता है कि राजनीतिक व्यवस्था पर ही प्रभावी होने से अन्य व्यवस्थाओं में भी इनकी भागीदारी बढ़ी है। इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित होकर भारत में महिलाओं को आधारभूत संस्थाओं अर्थात पंचायती राज संस्थाओं में सहभागी बनाने का प्रयास शुरू हुआ है। लेकिन पुरुष मानसिकता और पुरुष प्रधान समाज में यह काम इतना सरल और स्वाभाविक नहीं है, क्योंकि पुरुषों का अहंकार यह स्वीकार नहीं कर सकता कि जो महिलाएं उसके दासी या सेविका के रूप में सामाजिक परिस्थिति में सबसे नीचे के स्तर पर उसके अधीन थी वह उसके समकक्ष आ सकें। इसीलिए, संवैधानिक और प्रशासनिक माध्यमों से महिलाओं को राजनीतिक प्रक्रियाओं में सक्रिय करने के लिए विशेष संवैधानिक प्रावधानों की आवश्यकता हुई। यद्यपि विधायिका के अंतर्गत महिलाओं को आरक्षण देने का प्रावधान विगत कई वर्षों से लंबित है लेकिन प्रारंभिक स्तरों यानी पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को आरक्षण देकर राजनीति के प्रारंभिक स्तरों पर सहभागी बनाने का प्रयास किया गया है।

विश्व के अन्य विकासशील राष्ट्रों की भांति भारतीय महिलाएं भी शोषित और पीड़ित रही हैं। शोषण की यह प्रक्रिया प्रत्येक स्तरों पर देखी जा सकती है। बाह्य स्तरों पर जहां उसे राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में सहभागिता से रोका गया है वहीं आंतरिक संदर्भों में भी यह शोषण का शिकार रही हैं। विशेषकर घरेलू स्तरों पर उसे दासी, सेविका या मात्र भोग्या समझा जाता रहा है। इसलिए शारीरिक और मानसिक आधारों पर भी उसे प्रताड़ित और पीड़ित किया गया है। जब तक आंतरिक प्रताड़ना की प्रक्रिया को रोका नहीं जाएगा तब तक अन्य संदर्भों में भी विशेषकर सामाजिक, आर्थिक संदर्भों में उनकी सहभागिता प्राप्त नहीं की जा सकेगी। इसीलिए आंतरिक प्रताड़ना की प्रक्रिया को रोकने के लिए घरेलू हिंसा अधिनियम – 2005 संसद के द्वारा पारित किया गया। इस अधिनियम के माध्यम से भारतीय महिलाओं को वैश्विक प्रतिमानों के अनुरूप अधिकार संपन्न बनाने का प्रयास किया गया है।

1994 के वियना समझौता और बीजिंग घोषणा तथा कार्यवाही हेतु प्लेटफॉर्म (1995) में अभिस्वीकृत किया गया है कि घरेलू हिंसा निःसंदेह मानवाधिकार का मुद्दा है। संयुक्त राष्ट्र की महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने पर अभिसमय की समिति ने अपने सामान्य संस्तुतियों में सिफारिश किया है कि राज्य पक्षकारों को महिलाओं के विरुद्ध किये जाने वाले किसी भी प्रकार, विशेषतया परिवार के भीतर उद्भूत होने वाली हिंसा से संरक्षण देना चाहिए। भारत में घरेलू हिंसा की संवृत्ति व्यापकतः विद्यमान है लेकिन जनाचार में अदृश्य है। नागरिक कानून इस संवृत्ति को इसके समग्रता में निर्देशित नहीं करता है। वर्तमान समय में, जहां एक महिला अपने पति या उसके नातेदारों द्वारा क्रूरता के अधीन जीती है, वहां यह भारतीय दंड संहिता की धारा 498–क के अधीन अपराध है। दीवानी विधि में घरेलू हिंसा से आहत होने से महिलाओं को

संरक्षणार्थ और समाज में घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी महिलाओं की दशा सुधारने के लिए वैश्विक स्तर पर गंभीर प्रयास किए हैं। वर्ष 1975 को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित किया गया और 'समानता की ओर' रपट भी प्रकाशित की गई। भारत में वर्ष 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष घोषित किया गया। किन्तु यह संपूर्ण विश्व में महिलाओं की संख्या और उसके शिक्षा का स्तर आज भी चिंतनीय है। दक्षिण एशियाई क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति विकसित देशों की तुलना में खराब है। दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (दक्षेस) के देशों को इस दिशा में अभी एक लंबा सफर तय करना है। सामाजिक परिवर्तन को व्यापक बनाने के लिए गरीबी को दूर करना आवश्यक है।

यूनेस्को सांख्यिकीय संस्थान के अनुसार दक्षिण–पूर्वी एशियाई क्षेत्र में स्कूल न जाने वाली बालिकाओं की संख्या 2 करोड़ 80 लाख है। इसमें 45 फीसदी लड़कियां भारत की है। सरकारी हिसाब से इन बच्चियों की आयु स्कूल जाने की है लेकिन फिलहाल ये प्राथमिक शिक्षा से भी वंचित हैं। जो लड़कियां प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रवेश लेती है उनमें से पचास प्रतिशत किसी न किसी कारण से कक्षा 5 तक पहुंचने से पहले ही स्कूल छोड़ देती हैं। एक भी लड़की को शिक्षा से वंचित रखने की कीमत अकेले उस लड़की को ही नहीं, बल्कि उसके परिवार, उसके समाज और उसके देश को चुकानी पड़ती है।

यह सत्य है कि दक्षिण एशिया से विश्व की सर्वाधिक प्रसिद्ध

साक्षरता का प्रतिशत

वर्ष	कुल			अनुसूचित जातियां		
	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला	कुल
1991	64.13	39.29	52.21	49.91	23.76	37.41
2001	75.00	54.00	65.00	66.64	41.00	54.69

(स्रोतः वार्षिक रिपोर्ट 2004–05, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार)

महिला हस्तियां उत्पन्न हुई हैं लेकिन फिर भी समग्रता में उनकी राजनीतिक भागीदारी का स्तर काफी कम है। विधायिकाओं में उनका प्रतिनिधित्व काफी कम है जिसे देखते हुए इस क्षेत्र के कुछ देशों में आरक्षण की व्यवस्था भी की गई है। बांग्लादेश में विधायिका में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था 1972 में ही कर दी गई थी जो बढ़ते–बढ़ते अब काफी अच्छी स्थिति में आ चुकी है। अब वहां कुल 345 में से 45 सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित है जो कि 13 प्रतिशत है। इससे सुधार की आशा जगी है क्योंकि वहां महिलाओं का हालिया प्रतिनिधित्व मात्र दो प्रतिशत रहा है। स्थानीय स्वशासन को सुनिश्चित करने की कोशिशें की गई हैं। स्थानीय शासन के स्तर पर भारत और बांग्लादेश ने 1993 से महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की है। गांवों में पंचायती राज के तहत इन दोनों देशों में 33 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं को दिया गया है। पाकिस्तान ने भी वर्ष 2000 में ठीक यही व्यवस्था लागू की है ताकि बिल्कुल बुनियादी स्तर पर महिलाएं सक्रिय हो सकें और प्रशासन की दृष्टि से भागीदार और जागरूक हो सकें। कहना न होगा कि इन आरक्षणों के कारण कुछ सकारात्मक परिणाम सामने आ चुके हैं और कई अधिक उत्साहजनक परिणामों का इंतजार है। प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए समुदाय प्रबंधन का विचार भी आगे बढ़ रहा है जिससे महिलाओं की अधिक समतापूर्ण स्थिति सुनिश्चित होती है। जल, भूमि या जंगल जैसे संसाधनों के प्रबंधन जैसे मामले स्थानीय स्तर के होते हैं। इसके लिए घर से निकलकर ज्यादा दूर जाने की जरूरत भी नहीं पड़ती। इसलिए महिलाओं की सहभागिता ऐसे मामलों में आसानी से बढ़ाई जा सकती है। भारत में पश्चिम बंगाल में संयुक्त वन प्रबंधन काफी समय से चलाया जा रहा एक अच्छा प्रयास है, यद्यपि इसमें महिलाओं की और अधिक सहभागिता की आशा की जाती है।

तकनीकी परिवर्तन के दौर में ग्रामीण भारत में महिलाओं की स्थिति पर भी प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिए जिन जिलों में हरित क्रांति के कारण कृषि का विकास हुआ, वहां खेतों में काम करने वाली महिलाओं की संख्या में तेजी से गिरावट आई। कृषि कार्य में तकनीकी के प्रयोग के बढ़ने के साथ किसान समाज में अपनी स्थिति के प्रति जागरूक हो गए। चूंकि महिलाएं उनके लिए प्रतिष्ठा का प्रतीक होती है, इसलिए वे नहीं चाहते कि उनके घर की महिलाएं खेती–किसानी के काम में लगे। यह भी देखा गया है कि खेती में हिस्सेदारी भी सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों द्वारा निर्देशित होती है और इसके आधार पर कृषि समाज को दो भागों में बांटकर देखा जा सकता है। एक, वे परिवार जिनके पास भूमि है और दूसरा वे जिनके पास भूमि नहीं है। यह सही है कि दोनों समूहों की खेती में हिस्सेदारी होती है फिर भी खेती के तरीके और पहुंच में अंतर होता है। जिन महिलाओं के पास भूमि है वे सामान्यतया उच्च सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि से हैं और उनकी भागीदारी ऐसे कामों में ज्यादा रहती है जो बिना बाहर निकले, घर पर बैठकर ही किए जा सकते हैं। भूमिहीन परिवारों की महिलाएं निम्न सामाजिक–आर्थिक तबके से संबंधित

हैं और मूलतः दलित हैं। पंजाब की कृषि में महिलाओं की हिस्सेदारी देखें तो वे अधिकतर दलित तबके से ही हैं। वे दूसरों की जमीन पर खेती करती हैं, बदले में उन्हें नकद, वस्तु या अनाज के रूप में पारिश्रमिक दे दिया जाता है। लेकिन न्याय का दावा मुख्य रूप से महिलाओं की स्थिति पर उसके प्रभाव की ओर ध्यान केंद्रित करता है। दरअसल, प्रत्येक विकास नीति, योजना या परियोजना का महिलाओं पर प्रभाव पड़ता है और बिना महिलाओं के सक्रिय योगदान के वह सफल भी नहीं हो सकता है।

स्वाधीनता के पश्चात महिला कल्याण व सशक्तिकरण को राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक पोषण मिला। महिलाओं की स्थिति में सुधार तथा महिलाओं को विकसित समाज के मुख्य भाग से जोड़ने के लिए विधायी उपाय, कल्याणकारी योजनाएं तथा विकास कार्यक्रमों का संचालन किया गया। महिलाओं को अपने अधिकार तथा दायित्वों के प्रति सजग करने के लिए शिक्षा के समुचित अवसर उपलब्ध कराए गए है जिससे महिलाओं में स्वावलंबन और आत्म निर्भरता की भावना जागृत हो सकी।

विचारधारा के परिवर्तन से महिलाओं को घर की चहारदीवारी से निकलकर, दहलीज के बाहर की रंगीन दुनिया को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। महिलाओं के कदम दहलीज के बाहर जाना तत्कालिक समाज की विचारधारा के अनुरूप न था, किंतु बीते समय के साथ यह पहल समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन का स्वरूप लिए राष्ट्र की विकासधारा में सम्मिलित हो गयी। राष्ट्र के विकास की अग्रणी दूत बनी महिलाओं द्वारा देश ही नहीं वरन् विदेश में भी अपने राष्ट्र का परचम लहराया गया। समुद्र की गहराइयों से लेकर पहाड़ों की ऊंचाइयां भी इन कदमों के सामने छोटी पड़ गयी। राष्ट्र की आंतरिक तथा बाह्य गतिविधियां इनसे अछूती न रह पायीं।

प्रतिकूल परिस्थितियों में भी महिलाओं द्वारा निभायी गयी सराहनीय भूमिका का श्रेय उनके दृढ़ संकल्प, कर्तव्य परायणता तथा सहनशीलता को ही जाता है किंतु यह विडंबना ही है कि आजादी के इतने वर्षों पश्चात भी समाज के लगभग सभी वर्गों तथा क्षेत्रों में महिलाओं का विकास समान रूप से नहीं हो पाया है। जिसके लिए सरकार द्वारा निरंतर प्रयास जारी है।

सरकार राष्ट्र के संविधान की उद्देशिका में वर्णित सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्रदान करने के लिए पूर्ण कटिबद्ध है। संविधान में वर्णित प्रमुख अनुच्छेद–14, 15(3,4), 16, 19, 23, 24, 39(डी), 42, 47, 243(डी–टी) महिला कल्याण व सबलीकरण की दिशा में सभी वर्गों तथा क्षेत्रों की महिलाओं को विकास के आयाम छूने को प्रेरित करते हैं। संरक्षण की दृष्टि से सरकार महिलाओं को अधिकार प्रदान करती है।

73वें संविधान संशोधन के माध्यम से पं. रा. संस्थाओं में महिलाओं को न सिर्फ संवैधानिक स्थिति प्रदान की गई बल्कि उसे विशेष अधिकारों से संपन्न भी किया गया। अर्थात ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से साकार करने का कार्य शुरू हुआ। इस परिस्थिति में आधी आबादी अर्थात महिलाओं के योगदान के बिना यह कार्य संभव नहीं हो सकता, इसीलिए इस संवैधानिक संशोधन के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण देने का प्रावधान किया गया है। लेकिन इसके लिए महिलाओं का सशक्तिकरण और शैक्षणिक तथा राजनीतिक जागरूकता उत्पन्न करने की आवश्यकता है।

वस्तुतः महिलाओं का आरक्षण ग्रामीण विकास की प्रक्रिया पर तब तक प्रभावकारी नहीं हो सकता है जब तक कि वहां के सामाजिक, आर्थिक स्तर को मजबूत न कर दिया जाये। जहां राजस्थान राज्य के जयपुर जिला की महिलाओं के लिए इन विकेंद्रीकृत संस्थाओं में एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान राजनैतिक प्रक्रियाओं में महिलाओं को श्रेष्ठ स्थिति दिलाने को कटिबद्ध हैं। वहीं बिहार के लखीसराय जिले में महिलाओं की सीधे भागीदारी 50 प्रतिशत प्रावधानित हुई है, किंतु महिलाओं की आर्थिक–सामाजिक एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि में अभी बहुत सुधार अपेक्षित हैं।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को आरक्षण देने का उद्देश्य सबसे नीचे के स्तर पर अर्थात ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को बेहतर बनाना रहा है। निश्चित रूप से इसके कुल सकारात्मक पहलू उभरकर सामने आये हैं। लेकिन वास्तविक दृष्टि से इसके मूल्यांकन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण विकास में कथित आरक्षण के बाद भी उसका अपेक्षित लाभ नहीं मिल सका है। इसका मूल कारण वास्तविक शिक्षा का अभाव, सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता का अभाव, पुरुषों की अहंकारी प्रवृत्ति, सामाजिक संदर्भों में यथास्थिति बाद के दृष्टिकोण को माना जा सकता है। लेकिन इसका मूल्यांकन राजस्थान में विकसित जिले जयपुर एवं बिहार के पिछड़े जिले की श्रेणी में शामिल लखीसराय जिला के संदर्भ में करने की आवश्यकता है। क्योंकि इसके आधार पर न सिर्फ दो राज्यों के प्रतिमानों के आधार पर पंचायती राज संस्थाओं के लक्ष्य का

विश्लेषण करने का प्रयास किया जा सकता है बल्कि एक पिछड़े जिले को एक विकसित जिले के स्तर पर कैसे लाया जाये अर्थात कौन से ऐसे कारक हैं जिनको मानदंड बनाकर न सिर्फ विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है बल्कि पंचायती राज संस्थाओं के वास्तविक उद्देश्य को भी प्राप्त किया जा सकेगा।

राजस्थान बिहार की अपेक्षा शैक्षणिक और राजनीतिक दृष्टि से प्रारंभ में जहां पिछड़ा हुआ था वहीं दो दशकों के भीतर स्तरीय मानदंडों को प्राप्त करने में सक्षम रहा है। न सिर्फ शैक्षणिक आधारों पर बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और तकनीकी आधार पर भी जयपुर का सर्वांगीण विकास हुआ है। यहां विश्व के सबसे शक्तिशाली राष्ट्र के सबसे शक्तिशाली व्यक्ति अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन का आगमन हुआ तो जयपुर जिला इकाई का एक गांव 'नायला' की यात्रा के संदर्भों में समझा जा सकता है। इस गांव को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया उससे यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आया कि इस गांव की महिलाओं में न सिर्फ सांस्कृतिक जागरूकता है बल्कि वैश्विक मानदंडों के अनुरूप तकनीकी एवं शैक्षणिक जागरूकता भी है। स्वाभाविक रूप से ऐसी महिलाओं को आरक्षण देकर ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से संचालित किया जा सकता है। बिहार में साक्षरता का प्रतिशत भले ही कुछ बेहतर हुआ है लेकिन वास्तविक शिक्षा का घोर अभाव है। विशेषकर महिलाओं के संदर्भ में इस स्थिति को देखा जा सकता है। और जहां शिक्षा का अभाव होगा वहां न तो अपने अधिकार का बोध होगा, और न ही तकनीकी ज्ञान, न ही कर्तव्य बोध और न ही राजनीतिक महत्व की सहभागिता को समझा जा सकता है। विशेषकर लखीसराय जिला जिसकी भौगोलिक पृष्ठभूमि ही पिछड़ेपन का प्रतीक है। जहां इसके कुछ क्षेत्र दियारे के रूप में हैं जो बाढ़ की ही समस्या से ग्रसित रहते हैं जबकि कुछ क्षेत्र जल क्षेत्र के रूप में चर्चित है, जहां सुखाड़ की समस्या रहती है। आर्थिक विपन्नता के कारण सामाजिक अराजकता और अपराधीकरण की प्रवृत्ति रही है। साथ ही सामाजिक पिछड़ापन और सामंती मनोवृति भी इस जिले में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। इस परिस्थिति में लखीसराय जिले में महिलाओं को पंचायती राज संस्थाओं में निर्धारित आरक्षण के बावजूद ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से संचालित नहीं किया जा सका है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बिहार के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिदृश्य में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के 50 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान निश्चित रूप से महिलाओं को विकास कार्यों में सीधी भागीदारी सुनिश्चित करता है। लेकिन महिलाओं में वास्तविक शिक्षा एवं राजनीतिक चेतना के अभाव के कारण ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में उनका योगदान बाधित ही रह गया है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन संस्थाओं में आयी महिलाओं को विकास कार्यों के तकनीकी ज्ञान से प्रशिक्षित कर उनकी राजनीतिक चेतना के स्तर को जागृत किया जाये। वस्तुतः राजनीतिक चेतना का उच्च स्तर पंचायती राज संस्थाओं के सफल संचालन में दूरगामी परिणामों का द्योतक है। महिलाओं के राजनीतिक मुद्दों एवं सरकारी कामकाज के अलावा विकास कार्यों के बारे में अच्छी जानकारी से ही उनकी अर्थपूर्ण भागीदारी बढ़ सकती है। इसके अतिरिक्त बिहार के नौकरशाही परिवेश में ये महिलाएं संबंधित पदाधिकारी के साथ विकास मंत्रणा करने में जो संकोच करती हैं, उनसे भी छुटकारा पाने हेतु महिलाओं में शिक्षा की वास्तविक संकल्पना को साकार करने की आवश्यकता है। बिहार में वर्तमान सरकार के द्वारा शिक्षा मित्रों के नियोजन में 50 प्रतिशत महिलाओं को समायोजित करने के निर्णय से इनके अभिभावक के दृष्टिकोण में काफी बदलाव आया है। अब वे लड़कियों की शिक्षा पर भी पर्याप्त ध्यान देने लगे हैं। बिहार की महिलाओं का एक लंबा ओजस्वी अतीत रहा है। अब वक्त का तकाजा है कि उस स्वर्णिम अतीत को रूपहले भविष्य में बदला जाये। इस दिशा में मई 2006 में हुए पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव से 50 प्रतिशत महिलाओं की उपस्थिति वरदानस्वरूप मील का पत्थर साबित हो सकती है।

पी.एच.डी रिसर्चर, समाज विज्ञान संकाय (लोक प्रशासन)
मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड-4, तल-7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	550 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	750 रुपये (वार्षिक)

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन की शिक्षा पर रिपोर्ट की मुख्य बातें

- ग्रामीण भारत में करीब 73 प्रतिशत परिवार और देश की कुल जनसंख्या की लगभग 75 प्रतिशत आबादी रहती है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में करीब 26 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में करीब 8 प्रतिशत परिवारों में 15 वर्ष या उससे अधिक उम्र का एक भी ऐसा सदस्य नहीं था जो साधारण संदेश को पढ़ने, लिखने के साथ समझ भी सके।
- करीब 50 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों और लगभग 20 प्रतिशत शहरी परिवारों में 15 वर्ष या अधिक उम्र की कोई भी महिला साक्षर नहीं थी।
- प्रमुख राज्यों में ग्रामीण क्षेत्रों के जिन परिवारों में 15 वर्ष या अधिक उम्र का कोई सदस्य साक्षर नहीं पाया गया, उनका अनुपात केरल में सबसे कम (3 प्रतिशत) तथा बिहार में सबसे अधिक (38 प्रतिशत) था। शहरी क्षेत्रों में भी ऐसे परिवार केरल में सबसे कम (1 प्रतिशत) तथा राजस्थान में सबसे अधिक (16 प्रतिशत) थे। बिहार में ऐसे परिवार 15 प्रतिशत तथा पश्चिम बंगाल में 14 प्रतिशत थे।
- भारत में 2004–05 के दौरान साक्षरता दर 64 प्रतिशत थी। ग्रामीण इलाकों में साक्षरता दर 55 प्रतिशत जबकि शहरी क्षेत्रों में 75 प्रतिशत थी। करीब 64 प्रतिशत ग्रामीण पुरुष तथा 45 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएं साक्षर थीं। शहरी क्षेत्रों में 81 प्रतिशत पुरुष और 69 प्रतिशत महिलाएं साक्षर थीं।
- प्रमुख राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में, साक्षरता केरल में सबसे अधिक (83 प्रतिशत) तथा बिहार में सबसे कम (44 प्रतिशत) थी। दूसरी तरफ प्रमुख राज्यों के शहरी क्षेत्रों में साक्षरता दर केरल में सबसे अधिक (85 प्रतिशत) तथा राजस्थान में सबसे कम (64 प्रतिशत) थी।
- न्यूनतम मासिक प्रति व्यक्ति खर्च (एमपीसीई) श्रेणी में निरक्षरों का अनुपात सबसे अधिक पाया गया तथा जैसे–तैसे एमपीसीई बढ़ी निरक्षरों का अनुपात धीरे–धीरे कम होता गया।
- शहरी क्षेत्रों में न्यूनतम एमपीसीई श्रेणी में शिक्षितों का अनुपात (जैसे–सामान्य उच्च माध्यमिक पाया गया तथा डिप्लोमा/सर्टिफिकेट कोर्स सहित उच्च स्तर के साथ) सबसे कम पाया गया तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भी न्यूनतम एमपीसीई की दो श्रेणियों में ऐसी ही स्थिति पायी गई।
- 15 वर्ष या अधिक उम्र के व्यक्तियों में केवल 2 प्रतिशत ने ही तकनीकी डिग्री या डिप्लोमा अथवा सर्टिफिकेट प्राप्त किया था। ग्रामीण क्षेत्रों में इसका अनुपात केवल 1 प्रतिशत जबकि शहरी क्षेत्रों में 5 प्रतिशत था।
- 5–29 वर्ष की उम्र के करीब 50 प्रतिशत व्यक्ति शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षा पा रहे थे। इस मामले में पुरुष कुछ आगे (53 प्रतिशत) जबकि महिलाएं (46 प्रतिशत) पीछे थीं।
- प्रमुख राज्यों में, 5–29 वर्ष की उम्र वालों की मौजूदा उपस्थिति दर हिमाचल प्रदेश में सबसे अधिक (60 प्रतिशत) तथा उड़ीसा में सबसे कम (42 प्रतिशत) थी।
- सरकारी संस्थाओं में कुल छात्रों (यानी–जो फिलहाल स्कूल जाते हैं) का 63 प्रतिशत, निजी गैर सहायता प्राप्त संस्थाओं में 17 प्रतिशत, सहायता प्राप्त निजी संस्थाओं में 14 प्रतिशत तथा स्थानीय निकायों की संस्थाओं में केवल 6 प्रतिशत छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।
- फिलहाल शैक्षणिक संस्थाओं में नहीं जाने वाले 5–29 वर्ष के पुरुषों में करीब 55 प्रतिशत ने बताया कि वे 'परिवार की आय में हाथ बंटाने' के कारण स्कूल नहीं जा रहे हैं। फिलहाल किसी भी शैक्षणिक संस्था में नहीं जाने वाली 30 प्रतिशत महिलाओं ने 'घरेलू काम संभालने' को स्कूल न जाने का कारण बताया।
- 15–29 वर्ष की उम्र वाले व्यक्तियों में, करीब 2 प्रतिशत ने औपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा 8 प्रतिशत ने अनौपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण हासिल किया।
- 15–29 वर्ष की उम्र के बेरोजगार व्यक्तियों में औपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति सबसे अधिक थे। रोजगार प्राप्त व्यक्तियों में इसका अनुपात करीब 3 प्रतिशत था। बेरोजगारों के लिए यह अनुपात 11 प्रतिशत तथा श्रमिकों के लिए 2 प्रतिशत था।
- अनौपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त 15–29 वर्ष के व्यक्तियों ने 'कम्प्यूटर' ट्रेड' के प्रशिक्षण की सर्वाधिक मांग की तथा करीब 31 प्रतिशत ने ऐसा प्रशिक्षण प्राप्त किया।
- अनौपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराने में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आईटीआई)/औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र (आईटीआई) ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आईटीआई/आईटीसी से करीब 20 प्रतिशत व्यक्तियों ने औपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त किया।

RAU'S IAS

A name that Nation trusts

Amazing Success

Our 2005 Exam Results : Nine positions secured by our students in first 20 and 49 in first 100 with overall 203 total selections. As regards the past achievements, Study Circle has contributed nearly one-third of the total selections done for Civil Services by UPSC since 1953.

It is a well known fact that Rau's is the most trusted and recommended name all over the country for IAS & PCS coaching.

Unbeatable Strategy

Answers that matter : The most crucial fact about coaching is that it should improve the quality of your answers in the minimum possible time. It is precisely this training on which we focus on at Rau's to give an extra edge to the answers you give / write in the Civil Services Examination.

Interview Guidance - 2006

Interview Guidance for Civil Services Exam 2006, in highly focused new format. **Weekly batches will start after the declaration of the results of Main Exam 2006**

Programme Highlights

Civil Services/PCS Exam - 2008

- Personal Guidance (English Medium) is available for -
  General Studies/ Essay, History, Sociology, Public Administration, Geography, Psychology, Law & Commerce.
- पर्सनल गाइडेंस (हिन्दी माध्यम) -
  सामान्य अध्ययन / निबंध, इतिहास, समाजशास्त्र भूगोल एवं लोक प्रशासन में उपलब्ध।

  Postal Guidance in English Medium available for -
  General Studies, History, Sociology, Public Administration and Geography.
- पोस्टल गाइडेंस (हिन्दी माध्यम) -
  केवल सामान्य अध्ययन, भारतीय इतिहास एवं भूगोल में उपलब्ध।
- Hostel facility arranged.

कोई भी लक्ष्य बड़ा नहीं ।
जीता वही जो डरा नहीं ।।

If you are taught by the stars, sky is the limit.

New batches for 2008 Exam, start from 1st June, 2007

Admission Open, Apply Now.

Contact personally or write for prospectus with a DD/MO of Rs. 50/- favouring

RAU'S IAS STUDY CIRCLE

Head Office : 309, Kanchanjunga Bldg., 18, Barakhamba Road, Connaught Place, New Delhi-110001
Phone : 23738906-07, 23318135-36, 32448880-81, 65391202, Fax: 23317153

Jaipur Centre : 701, Apex Mall, Lal Kothi, Tonk Road, Jaipur - 302015, Ph.: 0141-6450676, 3226167, 9351528027

For full details on fast-track log-on our website: www.rauias.com

The Original Rau's - Since 1953

KH-05/07/01

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)-05/3164/2006-08
आई.एस.एस.एन. 0971-8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)-55/2006-08

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2006-08
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2006-08
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

प्रकाशक और मुद्रक : वीना जैन, निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली-110 020 : प्रभारी संपादक : कैलाश चन्द मीना